

# अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र सर्वोदय जगत

वर्ष-39, अंक-10, 1-15 जनवरी, 2016



“एक देश जो अपनी मिट्टी को नष्ट कर देता है,  
वह खुद को नष्ट कर लेता है। जंगल हमारी भूमि के फेफड़े हैं,  
वे हमारी हवा को शुद्ध करते हैं और लोगों को  
नयी ताकत देते हैं।”

—फ्रैंकलिन डी. रूजवेल्ट

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र  
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)  
द्वारा प्रकाशित

## अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र सर्वोदय जगत

सत्य-अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रान्ति का संदेश वाहक  
वर्ष : 39, अंक : 10, 1-15 जनवरी, 2016

संपादक

बिमल कुमार  
मो. : 9235772595

संपादक मंडल

डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय

सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र  
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)

फोन : 0542-2440-385/223

ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com  
Website : sssprakashan.com

### शुल्क

मूल्य	:	पांच रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये
खाता संख्या	:	383502010004310
IFSC No.	:	UBIN-0538353
Union Bank of India	:	

### विज्ञापन दर

पूरा पृष्ठ	:	2000 रुपये
आधा पृष्ठ	:	1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ	:	500 रुपये

### इस अंक में...

1. संपादकीय : पर्यावरण का संकट...	2
2. इंडिया द्वारा भारत की प्राकृतिक...	3
3. चीड़ भी जरूरी हैं हिमालय में...	4
4. पर्यावरण, प्रदूषण व विकलांगता...	6
5. कविता : शब्द-विस्फोट...	7
6. भूकम्प क्षेत्रों का पुनर्निर्धारण...	8
7. मनुष्य—एक व्यक्ति...	9
8. मोहन और महादेव...	12
9. कितने युवजन...	14
10. हमारा राष्ट्रीय महापाप...	15
11. आदिवासियों के लिए समर्पित थे...	18
12. कागज तुम्हारा, जमीन हमारी...	19
13. कविता : संघर्ष का संकल्प...	20

## संपादकीय

## पर्यावरण का संकट

दुनिया में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी में हो रहे परिवर्तन एक बड़ी चिन्ता का कारण बन गये हैं। क्योंकि यह केवल गरीबों या शोषित राष्ट्रों का संकट नहीं है। यह संकट सम्पन्न, ताकतवर एवं शोषण करने वाले राष्ट्रों को भी प्रभावित कर रहा है। लेकिन ये राष्ट्र चाहते हैं कि पृथ्वी को मानव-जीवन योग्य बनाये रखने के लिए शोषित राष्ट्र ही अपनी व्यवस्थाओं में परिवर्तन करें। शोषक व सम्पन्न राष्ट्र केवल वित्तीय योगदान एवं टेक्नॉलॉजी देने की जिम्मेदारी तक स्वयं को सीमित कर लेना चाहते हैं। पर्यावरण को बचाने के नाम पर दो तरह की दुनिया को स्थाई बनाये रखने का षड्यंत्र जारी है। ऐसा इसलिए है क्योंकि जिस भौतिक विकास का सब्जबाग तथाकथित विकसित (अर्थात् शोषक) राष्ट्रों ने दिखाया था, वह सारी मानवता को उपलब्ध नहीं कराया जा सकता है। लेकिन 'विकास' के रास्ते पर चलने के लिए इसलिए प्रेरित किया गया था ताकि शोषक राष्ट्रों का विकल्प नव-स्वतंत्र राष्ट्र सन् 1945 के बाद न तलाशने लगे। 50-60 वर्षों के बाद वैश्विक विमर्श में यह बात कही जा रही है कि 'विकास' का यह रास्ता सारी मानवता के अपनाने से पृथ्वी पर मानव-जीवन संकट में पड़ जायेगा।

पर्यावरण का संकट अपने में स्वतंत्र संकट नहीं है। ये संकट विकास और टेक्नॉलॉजी से उपजा संकट है। हजारों वर्षों से पृथ्वी पर मानव-जाति निवास कर रही है। लेकिन पर्यावरण का संकट; पिछले 300 वर्षों के वैश्विक पूंजीवादी विकास की देन है। इसका सगुण रूप कहें तो केन्द्रीकृत उत्पादन व केन्द्रीकृत वितरण व्यवस्था है। अर्थात् केन्द्रीकृत औद्योगीकरण एवं दूर-दराज को सम्पर्क में लाने वाली परिवहन व्यवस्था। विश्व भर में जिस तरह से उद्योग खड़े हुए,

उन्हें दूर-दराज से कच्चा माल लाना था तथा दूर-दराज तक अपने उत्पादित माल के बेचने के लिए भेजना था। बाजार व्यवस्था ने इसे सुगम बनाया। दूर-दराज से कच्चा माल लाने के लिए एक ओर शोषण व दोहन जरूरी था, तो दूसरी ओर जिन राष्ट्रों से इन कच्चे माल को लाना था उन्हें अपने मकड़जाल में भी फंसाना था। 'विकास' की नीति इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कारगर हुई। परिवहन व्यवस्था का विकास इस उद्देश्य की पूर्ति का दूसरा पहलू था।

इस आर्थिक राजनीति के उद्देश्य की पूर्ति के लिए हर राष्ट्र में एक समर्थक वर्ग को भी जुटाना था। नव-उदित मध्यम वर्ग ने इस भूमिका को निभाना शुरू कर दिया। पहले मध्यम वर्ग छोटा हुआ करता था तथा आमतौर पर क्रांतिकारी शक्तियों के साथ हुआ करता था। जो नया मध्यम वर्ग पैदा हुआ है, यह विकास के नाम पर शोषणकारी व्यवस्थाओं के पक्ष में है। इस विकास के लाभ चूंकि सीमित जनसंख्या को ही उपलब्ध हो सकते हैं, इसलिए पर्यावरण के नाम पर इसे उचित ठहराने की कोशिश हो रही है।

जरूरत है कि विकास की पूरी समझ को बदला जाये। केन्द्रीकृत उत्पादन व वितरण व्यवस्था से स्वावलंबी पर्यावरणीय ईकाइयों (ecological units) को खड़ा किया जाये। ग्राम स्वराज्य का विचार इसमें मदद कर सकता है क्योंकि गांव (चाहे वे कृषि-गांव हो, जल-गांव हो या वन-गांव हो) आज भी पर्यावरणीय ईकाई बनने की क्षमता रखते हैं। संसाधनों एवं कच्चे माल को दूर-दराज ले जाने वाली शोषणकारी/दोहनकारी व्यवस्था पर अंकुश लगे तथा उन जीवनोपयोगी चीजों का ही उत्पादन हो, जो सम्पूर्ण मानव-जाति को उपलब्ध हो सके। पर्यावरण संरक्षण, बिना क्रांतिकारी परिवर्तन के सम्भव नहीं होगा।

बिमल कुमार

## इंडिया द्वारा भारत की प्राकृतिक- संपदा की लूट

□ डॉ. मिथिलेश कुमार दांगी

इंडिया एवं भारत के बीच की खाई अब विकराल रूप लेती जा रही है। सबसे दुखद बात तो यह है कि केन्द्र एवं राज्य सरकारें 'इंडिया' के विकास के लिए 'भारत' को नेस्तनाबूत करने पर तुली हुई हैं। विकास के नाम पर भारत के दलितों, जनजातियों एवं किसानों से उनकी उपजाऊ जमीनें कंपनियों के लिए छीनकर उन्हें बेदखल किया जा रहा है।

मानव जीवन के सृष्टिकाल से ही मानव का अपने पर्यावरण के साथ अगाध संबंध है। मनुष्य अपनी जरूरत की चीजें पर्यावरण से लेता रहा है। वस्तुतः वह भी स्वयं प्रकृति का एक अंग है। परंतु जब मानव सभ्यता स्थाई हुई और पहले समाज एवं बाद में सरकार नामक संस्थाओं का गठन शुरू हुआ, तभी से मानव जीवन में दूसरे शक्तिशाली मानव की दखलअंदाजी भी प्रारम्भ हो गयी।

भारत के संदर्भ में कहें तो आदिकाल से अंग्रेजों के आने तक प्राकृतिक संसाधनों की मालिकियत जनसमुदाय के हाथों में सुरक्षित रही। परंतु अंग्रेजों के शासनकाल में सभी संसाधनों से धन वसूली की चाहत ने लोगों से यह अधिकार छीन लिये। अंग्रेजों के चले

जाने के बाद हालांकि संविधान में सिद्धांतः संसाधनों पर जनसमुदाय को नियंत्रण दिया गया है परंतु गैर संवैधानिक ढंग से सरकारों ने इन्हें अपने हाथों में रख लिया तथा इनके लूट की खुली छूट देशी एवं विदेशी कंपनियों को दे दी है। विकास एवं रोजगार के नाम पर हमारे देश का एक वर्ग सरकारों के इन कुकृत्यों का समर्थक एवं पोषक बना हुआ है। तथाकथित विकास के इस दौर में देश के अंदर स्पष्टतः दो देश दिख रहे हैं। इनमें से एक का नेतृत्व इसके 10-15 प्रतिशत लोग कर रहे हैं, जो देश को 'इंडिया' कहते हैं और जिन्होंने देश के 70-80 प्रतिशत संसाधनों पर कब्जा कर रखा है। यह देश भारत का शोषक है। दूसरे भाग में 85-90 प्रतिशत लोग निवास करते हैं जो अपने देश को भारत के नाम से जानते हैं और जिनके हिस्से में देश के 20-30 प्रतिशत संसाधन आ पाते हैं। इसी भारत में शोषित समाज जिनमें किसान, कारीगर एवं अन्य मेहनतकश ग्रामीण शामिल हैं, निवास करते हैं।

इंडिया एवं भारत के बीच की खाई अब विकराल रूप लेती जा रही है। सबसे दुखद बात तो यह है कि केन्द्र एवं राज्य सरकारें 'इंडिया' के विकास के लिए 'भारत' को नेस्तनाबूत करने पर तुली हुई हैं। विकास के नाम पर भारत के दलितों, जनजातियों एवं किसानों से उनकी उपजाऊ जमीनें कंपनियों के लिए छीनकर उन्हें बेदखल किया जा रहा है। भारत सरकार नये-नये कानूनों एवं अध्यादेशों के माध्यम से उन्हें बर्बाद करने में कोई कसर नहीं छोड़ रही है। कारपोरेट शक्तियों के हाथों देश के संसाधनों को बुरे तरीके से लुटवाया जा रहा है। आज का भारत एक तरह से इंडिया का उपनिवेश बन कर रह गया है।

सौभाग्यवश इस लूट के खिलाफ संघर्ष करने वाले मुट्ठी भर लोग वास्तविक भारत का प्रतिनिधित्व करते हैं। परंतु लोगों की स्थिति कबीले जैसी है। प्रत्येक कबीला प्रमुख अपने आपको श्रेष्ठ तथा दूसरे नेतृत्व को कमतर

समझता है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि सभी बचाने वाले अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं जबकि संसाधनों को लूटने वाले एकजुट होकर आम जनता पर लगातार आक्रमण कर रहे हैं। समय की पुकार है कि ऐसे तमाम संघर्षशील अपने-अपने कबीलों से बाहर निकलकर एकजुट हों तथा सभी प्राकृतिक संसाधनों, जो जनसमुदाय के हैं, उनकी रक्षा एवं उस पर मालिकियत स्थापित करने के लिए साझा संघर्ष प्रारम्भ किया जाए।

भारत का संविधान (अनुच्छेद 39 बी) भी संसाधनों पर जनसमुदाय की मालिकियत की बात करता है। सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले में (8 जुलाई, 2013, दावा नं. दीवानी अपील 4549/2000) यहां तक कह दिया गया कि जमीन मालिक ही खनिज का मालिक है, सरकारें नहीं। इतने स्पष्ट फैसले के बावजूद वर्तमान मोदी सरकार द्वारा एक और कानून बनाकर खनिज लूट को बेतहाशा बढ़ाया गया है। अब तो रायल्टी के नाम पर देश को ठगा जा रहा है।

खनिजों पर मालिकियत की अनिवार्यता को समझने के लिए झारखंड में कोयला एवं सोना भंडार को देख सकते हैं। अन्य खनिजों की लूट को शामिल कर दिया जाए तो यह लूट लगभग 1000 गुना हो जाएगी। झारखंड सरकार के वन एवं पर्यावरण मंत्रालय द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'ग्रीन कॉरिडोर' के अनुसार झारखंड में सोने का भंडार 72 मिलियन टन है, यानी 7 करोड़ 20 लाख टन अर्थात् 72 अरब किलोग्राम। अगर भारत की आबादी अगले दो वर्षों में 144 करोड़ हो जाए तो भारत में प्रति व्यक्ति 50 किलोग्राम सोना भंडार सिर्फ झारखंड में है। यह भंडार यहां की सरकार ने न्यूजीलैंड की दो कंपनियों को खनन के लिए दिया है। इसी प्रकार झारखंड में कोयला का भंडार है 69000 मिलियन टन, जिसकी बाजार भाव 3000 रुपये प्रति टन के हिसाब से कुल कीमत आती है 207 मिलियन रुपये। इसका अर्थ हुआ

207 लाख करोड़ रुपये। अर्थात् झारखंड से सिर्फ कोयला मद में देश के एक व्यक्ति के हिस्से के एक लाख 65 हजार रुपये कंपनियों को दिए जा रहे हैं। इसी तरह समूचे देश की सम्पत्ति का ब्योरा लगाया जा सकता है।

अतएव संघर्ष के साथियों के बीच यह प्रश्न उठता है कि इस लूट को चुपचाप सहते रहें या इसके खिलाफ एकजुट होकर इसे रोकें तथा इन संसाधनों पर जनसमुदाय के स्वामित्व की दिशा में आगे बढ़ें। हमें अब मुआवजा तथा पुनर्वास के बहकावे से ऊपर उठना होगा। तभी भारत के 70-80 प्रतिशत जनता की भलाई हो पाएगी तथा उन्हें इज्जत की जिन्दगी नसीब हो पायेगी अन्यथा वे उजड़ते रहेंगे और गुमनामी के अंधेरे में खोते रहेंगे।

अब वक्त आ गया है, जब हम व्यक्तिवादी विचार त्यागकर अपने क्षेत्र व समूह के अलावा बाकी सबको भी साथ लेकर चलने का विचार अपनाकर समूचे देश के सुनहरे भविष्य संवारने के लिए एकसाथ कदम बढ़ाएं। □

## पर्यावरण

# चीड़ भी जरूरी हैं हिमालय में

□ सुरेश भाई

**सर्वविदित है कि राज्यों में वनों के विदोहन के लिए वन निगम जैसी व्यवस्था बनी हुई है। इसने सन् 1973-74 में अपनी स्थापना से लेकर आज तक केवल वनों को काटकर मुनाफा कमाया है। अतः उन्हें जब पुनः कटान की स्वीकृति मिलेगी, तो वह सबसे पहले अपनी कमाई के लिए अंधाधुंध कटान को महत्त्व देगा।**

विश्वविख्यात चिपको आंदोलन को सन् 1983 में भारत सरकार के पत्र सं. 8-128/813/एफ.आर.आई. के द्वारा सूचना दी गयी थी कि हिमालय की गंभीर पारिस्थितिकीय स्थिति तथा बिना किसी ऊंचाई या ढाल या ध्यान रखते हुए, शिवालिक पहाड़ियों के पाद प्रदेश तक वनों के व्यावसायिक कटान पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। लेकिन इसके 10 साल बाद वर्ष 1994 में इस आदेश को चीड़ के सूखे पेड़ों के कटान के लिए हटा दिया गया था।

उस समय यह सूचना हिमालय सेवा संघ के माध्यम से पूरे देश में पहुंचायी गयी थी और उत्तराखंड में लोग चौकन्ना हो गये थे। इसके पीछे आशंका थी कि चीड़ के वनों के नाम पर कहीं दुर्लभ वन प्रजातियों का व्यावसायिक दोहन न हो। बाद में यह डर तब सच साबित हुआ, जब उत्तराखंड के नौजवानों के एक पर्यावरण दल ने गंगा नदी के उद्गम क्षेत्र में स्थित सर्वाधिक ऊंचाई वाले पर्वतों में

जाकर वन निगम के मजदूरों द्वारा हरे पेड़ों की कटाई के प्रमाण लोगों के सामने पेश किये। जबकि सरकार की ओर से कहा गया था कि वे चीड़ के सूखे, सिर टूटे, उखड़े पेड़ों की कटाई के लिए ही प्रतिबंध हटा रहे हैं। लेकिन पर्यावरण दल ने जब रयाला, हर्शल, धराली, मुखवा (9 हजार फीट), चौरंगी खाल (7 हजार फीट) आदि कई वन क्षेत्रों के बारे में खोज की, तो वहां पर राई, कैल, मुरेंडा, खर्सू, मौरू एवं देवदार जैसी अमूल्य प्रजातियों के हरे पेड़ों की कटान की गयी थी। कई स्थानों पर इन प्रजातियों के पेड़ों के स्लीपर जंगल में पड़े मिले थे। तब लोगों ने इसके खिलाफ पेड़ों पर राखी बांधकर रक्षासूत्र आंदोलन की शुरुआत की थी। यह आंदोलन सन् 2000 तक चला।

रक्षासूत्र आंदोलन ने सफलतापूर्वक टिहरी, उत्तरकाशी के लाखों हरे पेड़ों के कटान को रोका। साथ ही वन और पर्यावरण मंत्रालय के एक जांच दल के द्वारा 121 वनकर्मियों को भी दोषी ठहराया गया था। इस आंदोलन के बाद आज भी उत्तराखंड में कई स्थानों पर लोग पेड़ों पर राखी बांधकर भाईयों जैसा प्यार देते हैं।

चिन्ता की बात यह है कि केन्द्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्री प्रकाश जावड़ेकर के माध्यम से उत्तराखंड सरकार अब पुनः चीड़ के वनों को काटने के लिए केन्द्र की स्वीकृति की इंतजार में दिखाई दे रही है। इसके पीछे का मुख्य कारण राजस्व कमाने का लक्ष्य है, लेकिन कहा यह जा रहा है कि चीड़ को कम करके इसके स्थान पर चौड़ी पत्ती के वनों का रोपण किया जायेगा। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि चीड़ के वन, कुल वन क्षेत्र के 17 प्रतिशत क्षेत्रफल में फैले हुए हैं। अब यह मिश्रित वनों के बीच में भी अपना स्थान बना रहे हैं। चीड़ की पत्तियां और फल ग्रीष्मकाल में वनों में आग फैलाने का कारण भी बन रहे हैं। लेकिन यह भी सच्चाई है कि हर वर्ष असफल वृक्षारोपण के संकेतों को भी वनों में आग लगाकर नष्ट किया जाता है।

इस बात से कतई इनकार नहीं किया जा

**‘सर्वोदय जगत’**  
के सभी सुहृद पाठकों, ग्राहकों,  
लेखकों व शुभचिन्तकों को  
**‘नववर्ष’**  
के  
पावन अवसर पर  
सर्व सेवा संघ,  
सर्व सेवा संघ प्रकाशन  
एवं  
‘सर्वोदय जगत’ परिवार  
की ओर से  
**ढेर सारी बधाइयाँ**  
व  
**हार्दिक शुभकामनाएँ!**

सकता कि वन विभाग ने चीड़ की नर्सरी और चीड़ के पेड़ों का रोपण करके हिमालय क्षेत्र में इनको फैलाया है। इसके कारण उत्तराखंड समेत हिमालय क्षेत्र के सभी जंगल चीड़ बाहुल्य बन गये हैं। यहां के गांव की जलावन की आपूर्ति इसी से होती है व पशुओं के नीचे इसकी पत्तियों को बिछाकर गोबर भी बनाया जाता है। चीड़ से लीसा निकालकर उत्तराखंड की सरकार को प्रतिवर्ष 57 करोड़ का राजस्व मिलता है। आंकड़ों के अनुसार उत्तराखंड में ही प्रतिवर्ष 23.66 लाख टन चीड़ की पत्तियां जमीन पर गिरती हैं। पंतनगर विश्वविद्यालय की प्रयोगशाला में किये गये एक प्रयोग से पता चला कि कैल्शियमयुक्त पानी को चीड़ की सूखी पत्तियों (पिरूल) से गुजारने के बाद यह कैल्शियममुक्त हो जाता है। इसका मतलब हुआ कि यह नदियों को साफ-सुथरा भी रख सकता है। दूसरा, इसका इस्तेमाल चैकडैम के साथ भूस्खलन रोकने में भी हो सकता है। चीड़ बहुत से व्यावसायिक लाभ भी देता है, इसी के कारण इस पर बार-बार प्रतिबंध लगता और हटता है। इसी आड़ में बहुमूल्य चौड़ी पत्ती वाली बांझ, कैल, मौरू, राई आदि दुर्लभ वन प्रजातियों का व्यावसायिक दोहन आसान हो जाता है।

सन् 1994 में हटे प्रतिबंध के विरोध में रक्षासूत्र आंदोलन की पहल पर तत्कालीन प्रमुख वन संरक्षक विद्याभूषण गौड़ और भागीरथी वृत्त के वन संरक्षक आनंद सिंह नेगी ने अपनी रिपोर्ट में चीड़ के अतिरिक्त अन्य दुर्लभ प्रजातियों के बड़े पैमाने पर हुए व्यावसायिक दोहन का खुलासा भी किया था। इसके लिए उन्होंने वन निगम को सर्वाधिक दोषी बताया था। इस प्रकार लाभ-हानि दोनों के बीच तौलकर देखा जाय तो चीड़ को कुल्हाड़ी लेकर एकदम काट देने से पहाड़ों की हरियाली ही गायब हो जायेगी। इसके अतिरिक्त भूस्खलन के साथ बाढ़ एवं भूमि कटाव की समस्या भी पैदा हो जायेगी। चौड़ी पत्ती के वनों की मात्रा इतनी नहीं है कि वह पहाड़ों में भूस्खलन रोक सके। इसके बावजूद राज्य सरकार केन्द्र की स्वीकृति के बाद अपनी कैबिनेट के द्वारा प्रस्ताव पारित करके वनों की

## मूल्य-परिवर्तन से पनपेगी अहिंसक संस्कृति

□ आचार्य दादा धर्माधिकारी

“ आज के समाज में आदमी पैसे के कारण, शरीर-बल के कारण और अपने जन्म के कारण बड़ा माना जाता है। धन के कारण, सत्ता के कारण, सैनिकता के कारण या जाति के कारण नहीं।

गुण की कोई कीमत नहीं होती, गुण के बदले में कुछ नहीं मिल सकता, अर्थात् गुण की पूजा समाज में किसी वस्तु से नहीं हो सकती। गुणवान मनुष्य लोगों का प्रेम पाता है। यही उसका पारितोषिक है। गुणवान मनुष्य सत्ता और सम्पत्ति का इच्छुक कभी नहीं रहेगा।

आज जिसके पास पैसा है, उसकी समाज में इज्जत है, पैसा किसी भी तरह क्यों न आया हो। जो मेहनत करता है, उसकी इज्जत नहीं। इस हालत को बदलने के लिए क्या करना पड़ेगा? जो मेहनत करता है, उसकी समाज में इज्जत होनी चाहिए। आज क्यों नहीं है? इसलिए नहीं कि मेहनत करने वाला अपनी मेहनत बेचता है और वह अपनी मेहनत न बेचे तो उसकी गुजर नहीं हो सकती है। जो मेहनत खरीदता है, वह मालिक बनता है। जो अपनी मेहनत बेचता है, उसे मजदूर कहते हैं, जो दूसरे की मेहनत खरीदता है, वह मालिक कहलाता है। यह बड़ा बेढंगा रिश्ता है। यह रिश्तेदारी अच्छी नहीं है। इस समाज से इस रिश्तेदारी को मिटाना चाहिए। ऐसी हालत पैदा करना चाहिए कि किसी आदमी को अपनी मेहनत नहीं बेचनी पड़े और कोई आदमी दूसरे की मेहनत नहीं खरीद सके। मतलब कि समाज में एक मालिक और एक मजदूर हो, ऐसा फर्क नहीं रहे। समाज में जो मेहनत करता है, वह मालिक होगा। जो मालिक होगा वह मेहनत करेगा। अगर गरीब की भलाई, गरीबी को मिटाने में है, तो अमीर की भलाई अमीरी को मिटाने में है। यही सर्वोदय है।” □

व्यावसायिक कटाई का रास्ता खोलने वाली है। सर्वविदित है कि राज्यों में वनों के विदोहन के लिए वन निगम जैसी व्यवस्था बनी हुई है। इसने सन् 1973-74 में अपनी स्थापना से लेकर आज तक केवल वनों को काटकर मुनाफा कमाया है। अतः उन्हें जब पुनः कटान की स्वीकृति मिलेगी, तो वह सबसे पहले अपनी कमाई के लिए अंधाधुंध कटान को महत्त्व देगा। जबकि उच्चतम न्यायालय के 12 दिसंबर, 1996 के आदेश के अनुपालन में बनायी गयी विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट में वन निगम की कार्यशैली में आमूलचूल परिवर्तन की सिफारिश की गयी थी, जिस पर राज्यों ने अभी तक ध्यान नहीं दिया। सन् 1988 की ‘वन नीति’ में वनों को गांव के अधिकार और नियंत्रण से बाहर रखा गया है। कहीं भी लोगों को पूछकर सूखे

पेड़ों का निस्तारण आज तक नहीं हुआ है। जबकि स्थानीय लोगों का जीवन वनों पर निर्भर है। विषैली कार्बन को सोखने और जलस्रोतों व नदियों को प्राण देने वाले वनों की सेवा पर्यावरण संरक्षण के लिए सर्वाधिक महत्त्व रखती है।

उत्तराखंड की सरकार चीड़ के नाम पर लाखों पेड़ों को काटने के लिए जितनी उत्सुक दिखती है, उतनी उत्सुक वृहद स्तर पर चौड़ी पत्ती के वनों के रोपण के लिए नहीं है। यदि चीड़ के पेड़ों की कटाई पर फिर से प्रतिबंध हटाया तो इसके विरोध में वे तमाम चिरपरिचित हस्तियां अभी मौजूद हैं, जिन्हें सरकार ने तमाम पुरस्कारों से नवाजा है। ऐसे किसी भी आदेश के जारी होते ही वनों को सीधे वनवासियों को सौंपने की मांग जोर पकड़ लेगी। □

## पर्यावरण, प्रदूषण

### व विकलांगता

□ विनोद कुमार मिश्र

आज के युग में गर्भवती महिलाएं हर तरफ प्रदूषण से घिरी हैं। कामगार महिलाएं औद्योगिक प्रदूषण का भी सामना करती हैं और जब अस्पताल में भर्ती होती हैं तो चिकित्सा के उपरांत के अवशिष्ट कचरे से भी प्रभावित होती हैं। घरों में भी आजकल खतरनाक कीटनाशकों का उपयोग मच्छरों, तिलचट्टों को मारने के लिए बहुतायत से होता है। हमारी दीवारों पर होने वाले पेंट में भी अल्प मात्रा में लेड (सीसा) होता है।

स्वस्थ बच्चे का जन्म अनेक बातों पर निर्भर करता है। यदि माता-पिता दोनों स्वस्थ हों, पर उनके बीच नजदीकी रक्त संबंध हो, जैसा कि मुस्लिम समाज में आम है तथा दक्षिण भारत के कतिपय हिन्दू समुदायों में भी देखा जाता है, तो आनुवंशिक कारणों से जन्म-जात विकलांगता की सम्भावना बढ़ जाती है।

इसी प्रकार स्वच्छ पर्यावरण भी स्वस्थ मनुष्य के जन्म के लिए अनिवार्य है। यदि हमारे जंगल, नदियां, खेत, झीलें, समुद्र स्वस्थ होंगे तभी स्वस्थ मनुष्य का अस्तित्व बना रहेगा। यदि इनमें प्रदूषण बढ़ेगा, तो उसका प्रभाव मनुष्यों पर भी पड़ेगा तथा संभव है कि इससे विकलांगता भी बढ़े।

**बढ़ता प्रदूषण :** द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् 80 हजार नये रसायनों का आविष्कार

हुआ है, जिनमें से 15 हजार का बहुतायत से उपयोग हो रहा है। यह गति बढ़ती ही जा रही है, और प्रति वर्ष 1500 नये रसायन बाजार में आ जाते हैं। ये रसायन प्रयोग के पश्चात् हवा और पानी में मिल जाते हैं और उनके माध्यम से विभिन्न प्राणियों के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। कृषि में प्रयुक्त कीटनाशक; खाद्य पदार्थों के माध्यम से मनुष्य के शरीर में पहुंच जाते हैं। आजकल गाय, भैंसों का दूध भी प्रदूषण से मुक्त नहीं है।

उपर्युक्त प्रदूषण माता के गर्भ में पल रहे भ्रूण को भी प्रभावित करते हैं। इसके अतिरिक्त इसका अंश माता के दूध में भी पहुंच जाता है, जिसे शिशु पीता है। इसके कारण मानसिक मंदता, सेरेब्रल पाल्सी तथा अन्य प्रकार की विकलांगता उत्पन्न होती है।

हर प्राणी के बच्चे अधिक संवेदनशील होते हैं। मानव शिशु भी अति संवेदनशील होता है। वह अपने शरीर के भार के अनुपात में औसत मनुष्य की तुलना में अधिक खाता है, अधिक पीता है तथा सांस लेता है। अपने शरीर के भार की तुलना में वह औसत मनुष्य से दोगुना सांस लेता है तथा सात गुना अधिक पेय पदार्थ जैसे—जल, दूध आदि पीता है।

इस कारण वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, भूमि प्रदूषण आदि का उन पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यही नहीं शिशु भूमि के अधिक निकट रहता है। उसके समय का बड़ा भाग फर्श, मिट्टी, कालीन आदि पर बीतता है और इस प्रकार वह प्रदूषण से बहुत अधिक प्रभावित होता है।

शिशु की प्रवृत्ति होती है अधिकाधिक चीजों को स्पर्श करना, और वह हर वस्तु को खाद्य-पदार्थ समझकर मुंह में लेने का प्रयास करता है। औसत परिवारों, विशेष रूप से गरीब परिवारों में सफाई के प्रति लोग उतने जागरूक नहीं होते, जितना कि उन्हें होना चाहिए। इस कारण प्रदूषण का प्रभाव उन पर बढ़ता जाता है।

दूसरी ओर शिशु में रोग प्रतिरोधक क्षमता वयस्क की अपेक्षा कम होती है। उनके

शरीर का ज्यों-ज्यों विकास होता है त्यों-त्यों उनका प्रतिरोधी तंत्र सशक्त होता जाता है। उनका खान-पान व स्वभाव भी बदलता है। किशोरावस्था तक उसकी संवेदनशीलता सामान्य हो जाती है। यही कारण है कि अनेक बीमारियां जो विकलांगता को जन्म देती हैं, वे नवजात शिशुओं व बारह वर्ष तक की आयु के बच्चों को आसानी से अपना शिकार बना लेती हैं।

हालांकि पर्यावरण के कारण विकलांगता के अधिकांश मामले शैशवावस्था व बाल्यावस्था में प्रारम्भ होते हैं पर वयस्क भी इससे अछूते नहीं हैं। हालांकि वयस्कावस्था तक व्यक्ति का स्वभाव, खान-पान स्थिर हो जाता है तथा रोग प्रतिरोधक तंत्र सशक्त हो जाता है; परंतु जिस गति से पर्यावरण प्रदूषण बढ़ रहा है, वयस्क भी तेजी से इसकी चपेट में आ रहे हैं। पारा, सीसा जैसी भारी धातुएं तथा अन्य कीटनाशक दवाएं जिस तेजी से पर्यावरण में फैल रहे हैं, उनका सीधा प्रभाव मनुष्य के तंत्रिका तंत्र पर पड़ रहा है। इसके कारण बोलने, सीखने, पढ़ने, गणना करने, याद रखने, किसी विषय के बारे में समझ विकसित करने, संगठित करने, सामाजिक व्यवहार करने एवं आम व्यवहार या आदत से जुड़ी सामान्य गतिविधियां बाधित होती हैं।

पर्यावरण प्रदूषण प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों ही रूप से विकलांगता को जन्म दे रहा है। अनेक मामलों में आनुवंशिक विकृतियां होती हैं पर ये इतनी प्रभावी नहीं होती हैं कि विकलांगता को जन्म दें। किन्तु यदि पर्यावरण प्रदूषण भी प्रभावी हो जाए तो आनुवंशिक विकृतियां अंततः विकलांगता को जन्म देती हैं, या उसे बहुत बढ़ा देती हैं और इसका प्रत्यक्ष उदाहरण दमा है। जिसकी उत्पत्ति तो आनुवंशिक कारणों से होती है; परंतु वायु प्रदूषण इसे भड़का देता है और व्यक्ति की स्थिति विकलांग तुल्य हो जाती है। ज्यों ही व्यक्ति अनुकूल जलवायु में जाता है, उसकी स्थिति सामान्य हो जाती है।

आज के युग में गर्भवती महिलाएं हर तरफ प्रदूषण से घिरी हैं। कामगार महिलाएं

औद्योगिक प्रदूषण का भी सामना करती हैं और जब अस्पताल में भर्ती होती हैं तो चिकित्सा के उपरांत के अवशिष्ट कचरे से भी प्रभावित होती हैं। घरों में भी आजकल खतरनाक कीटनाशकों का उपयोग मच्छरों, तिलचट्टों को मारने के लिए बहुतायत से होता है। हमारी दीवारों पर होने वाले पेंट में भी अल्प मात्रा में लेड (सीसा) होता है। इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों में बड़े पैमाने पर पारा उपयोग होता है, जो उपयोग के पश्चात् भूमि व जल में मिल जाता है। घर, स्कूल, अस्पताल, कार्यालय सभी जगहों पर भवन-निर्माण सामग्री से लेकर सजावटी सामग्री में प्रदूषणकारी सामग्री का उपयोग होता है, जो गर्भवती महिलाओं, उसके गर्भ में पल रहे शिशुओं को प्रभावित करती हैं और जन्म के पश्चात् जब शिशु माता का दूध पीता है तो उसके माध्यम से भी ये पदार्थ अल्प मात्रा में ही सही; उनके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

आज पूरे विश्व में वृद्धों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। वृद्धावस्था अपने साथ विकलांगता भी लाती है। पर्यावरण प्रदूषण इस विकलांगता की स्थिति को और भयानक बना देता है। युवावस्था व प्रौढ़ावस्था में जब व्यक्ति प्रदूषण का सामना करता है तो अपनी उम्र की ऊर्जा शक्ति के कारण उसे अपने ऊपर हॉवी होने नहीं देता। परंतु 50 वर्ष की आयु के पश्चात् उसका मस्तिष्क एवं तंत्रिका तंत्र कमजोर पड़ने लगता है और वह विभिन्न प्रकार की विकलांगताओं से ग्रसित हो जाता है। इनमें भूलने की समस्या, कम सुनना, अंगों में संवेदनशीलता का अभाव आदि आम हैं।

आज विकास बनाम पर्यावरण सुरक्षा का विषय जोरों पर है। लोग आर्थिक लाभ के कारण चकाचौंध की आड़ में छिपे पर्यावरण संबंधी खतरों को अनदेखा कर रहे हैं। अब आंख खोलने का समय आ गया है।

सबसे बड़ी बात यह है कि विकास का बड़ा लाभ ऊंचे तबकों को मिलता है और विकास के कारण उत्पन्न समस्याओं जैसे— प्रदूषण आदि का सर्वाधिक प्रभाव समाज के

कविता

## शब्द-विस्फोट

□ भवानी प्रसाद मिश्र

जैसे कुछ बम होते हैं,  
समय पाकर फट जाने वाले,  
वैसे कुछ शब्द होते हैं—  
लगभग चुपचाप पड़े रहते हैं,  
सहते हुए लोगों की अवज्ञा  
और लापरवाही,  
क्षत-विक्षत करते हुए  
आसपास के ऐसे अस्तित्वों को,  
जो अपने को अजर-अमर मानकर  
मनमानी करते चले जा रहे थे।  
ऐसे ही हैं ये सत्य, अहिंसा,  
सत्याग्रह, असहयोग आदि शब्द,  
संसार भर की झूठी शक्तियों की,  
अवज्ञा से घिरे हुए,  
चुप हैं जो अभी उनके लेखे  
जिन्हें सिवा अपने कुछ नहीं दीखता।  
विस्फोट होगा इन शब्दों का अपने क्षण पर,  
संसार के रण-वादियों पर और रण पर,  
सपने उनके ढह जायेंगे  
रेत के महलों की तरह,  
बिखर जायेंगे टूटकर काँच के  
टुकड़ों की तरह,  
खोखले प्रजातंत्र खून में डूबे गणतंत्र।

तब शासन के ये ढांचे—  
असल में मानवता को  
अपनी विद्वृपता की शकल में  
ढालने वाले सांचे  
कच्ची माटी के भी नहीं ठहरेंगे,  
फहरेंगे सच्चाई के परचम  
और हम जो व्याकुल हैं  
देखने के लिए वह दृश्य,  
उन शब्दों का उच्चारण करेंगे  
राम के नाम की तरह।  
बचाया नहीं जा सकेगा फिर,  
केवल इन शब्दों के उच्चारण भर से,  
आपाद-मस्तक अणु-शस्त्रों से सज्ज  
निर्भय और निर्लज्ज राष्ट्रधिपतियों को,  
गतियों को उनकी  
जो अपने को ब्रह्माण्ड का स्वामी मानते हैं,  
जो धरती और सागर  
और आकाश के ग्रह नक्षत्रों तक को  
लूटने के ख्याल से छानते हैं।  
ये शब्द उनके शरीर को नहीं छुयेंगे,  
छुयेंगे उनकी आत्मा को,  
और तब चुएं उनकी खूनी आंखों से  
पश्चात्ताप के आंसू! □

गरीब तबकों पर पड़ता है। ध्यान देने वाली बात यह भी है कि गरीब तबका प्रकृति के अधिक निकट रहता है। प्रकृति की समृद्धि व प्रकृति को होने वाले नुकसान का सर्वाधिक प्रभाव उनपर ही पड़ता है। इसके प्रत्यक्ष प्रभाव का हम वर्तमान जलवायु परिवर्तन व उसके कारण उत्पन्न स्थिति के आकलन से अनुभव कर सकते हैं। जलवायु परिवर्तन का सर्वाधिक प्रभाव उन फसलों पर पड़ रहा है, जिसका उपयोग गरीब तबका अधिक करता है। इन फसलों का आर्थिक लाभ पहले भी कम था और अब तो बहुत ही कम हो गया है।

एक ओर जहां समाधान के तौर पर सबसे सुरक्षित विकल्प के चयन पर बल दिया जाना चाहिए, वहीं दूसरी ओर किसी रसायन या अन्य प्रदूषणकारी पदार्थ के निर्माता पर उत्पन्न प्रदूषण का पूरा भार डाला जाना चाहिए। इससे प्रदूषक पदार्थों के विनिर्माण व उपयोग पर पाबंदी लगेगी।

हम स्वस्थ जीवन बिताएं तथा हमारी आने वाली संतानें भी स्वस्थ रहें, यह हमारा मौलिक अधिकार है। ऐसी किसी भी स्थिति में जो विकलांगता को जन्म देती हैं, से हर सम्भव बचाव अनिवार्य है। (‘इंडिया वाटर पोर्टल, हिन्दी’ से) □

## भूकम्प क्षेत्रों का पुनर्निर्धारण

□ डॉ. ओ. पी. जोशी

**भूगर्भीय संरचनाओं में आ रहे बदलाव के कारण भूकम्प के क्षेत्रों का फिर से निर्धारण करना जरूरी हो गया है। कल तक देश के जो शहर भूकम्प के जोन तीन में थे, वे आज जोन चार में हो सकते हैं। वैसे भी भूकम्प मानव द्वारा बनाये नियम, कानून या जोन आदि को नहीं मानता।**

भारत विश्व के उन पांच देशों में शामिल है, जहां भूगर्भीय आपदाओं का सबसे ज्यादा खतरा है। ब्यूरो आफ इंडियन स्टैंडर्ड के अनुसार देश को पांच भूकम्पीय क्षेत्रों (जोन) में बांटा गया था। परंतु बाद में किये गये अध्ययनों के आधार पर चार जोन ही रह गये। वर्ष 2005 में भूगर्भ वैज्ञानिकों ने बताया कि देश का कोई भी हिस्सा जोन एक में नहीं है। पहले देश का निचला हिस्सा यानी दक्षिण भारत के कुछ भागों को जोन एक में रखा गया था। वर्तमान में केवल 2 से 5 तक जोन हैं। जोन दो, जिसे सबसे कम खतरे वाला माना जाता है, अब दक्षिण भारत के कुछ क्षेत्र शामिल हैं। जोन तीन, जहां झटके आने की सम्भावना बनी रहती है, उसमें देश के मध्य भाग को रखा गया है। जोन चार, जहां खतरा लगातार बना रहता है, उसमें उत्तर

भारत सहित दिल्ली व तराई के क्षेत्र शामिल हैं। जोन पांच के अंतर्गत भूकम्प के हिसाब से माने जाने वाले सबसे खतरनाक हिमालयीन क्षेत्र, पूर्वी तट क्षेत्र एवं कच्छ आते हैं।

दक्षिण भारत को भूकम्प के संदर्भ में सुरक्षित समझे जाने वाली अवधारणा को उस क्षेत्र में आये भूकम्पों ने गलत साबित कर दिया है। 11 दिसंबर, 1967 को जब भूकम्प आया तो वैज्ञानिक आश्चर्यचकित रह गये क्योंकि तब तक यह माना जाता था कि यह इलाका भूगर्भीय गतिविधियों से सुरक्षित है। पश्चिमी तटीय क्षेत्र भी भूकम्प के संदर्भ में अब उतना सुरक्षित नहीं है, जितना कि माना जाता था। यहां वर्ष 1598 से लेकर 1832 तक 10 भूकम्पों का वर्णन मिलता है। वर्ष 1757 व वर्ष 1764 के भूकम्प महाबालेश्वर के क्षेत्र में आये थे। सितंबर, 1993 में महाराष्ट्र के लातूर तथा उस्मानाबाद में आये भयानक भूकम्प पर बेंगलूरू के सेंटर फॉर मेथेमेटिक्स के वैज्ञानिक प्रो. विनोद गौड़ ने बताया था कि “लातूर के भूकम्प ने प्रचलित मान्यताओं को हिलाकर रख दिया है, जिससे साबित होता है कि भारतीय महाद्वीप में कहीं भी 6.5 तीव्रता का भूकम्प आ सकता है, अर्थात कन्याकुमारी से हिमालय तक फैला देश भूकम्प का शिकार बन सकता है।”

इस भूकम्प ने स्पष्ट कर दिया कि दक्षिण भारत का क्षेत्र भी अब स्थाई एवं सुरक्षित नहीं है। दिसंबर, 2004 में आयी सुनामी ने भी कई पुरानी प्रचलित मान्यताओं को बदल दिया। इस समय देश-विदेश के प्रसिद्ध भू-वैज्ञानिकों तथा भूकम्प विशेषज्ञों ने बताया था कि भारतीय प्लेट भूकम्प के हिसाब से ज्यादा सक्रिय हो गयी है, जिसका लगातार अध्ययन कर निगरानी रखना जरूरी हो गया है। भूकम्प कोई भौगोलिक सीमा नहीं मानता, अतः इस समस्या से जुड़े देशों को संयुक्त रूप से अध्ययन व निगरानी का कार्य करना चाहिए। 9.3 तीव्रता की सुनामी के तीन माह बाद उसी स्थान पर 8.6 तीव्रता का भूकम्प

आया एवं वर्ष 2005 में 7.6 तीव्रता का भूकम्प फिर भारत व पाकिस्तान में आया।

वर्ष 2009 में पूर्वोत्तर क्षेत्र में प्रत्येक दस दिन में भूकम्पीय झटके आये एवं भूगर्भीय हलचल तेज हुई। शिलांग स्थित सेंटरल सिस्मोलोजिकल आब्जर्वेटरी के अनुसार इस क्षेत्र में पिछले 25 वर्षों में हल्के व मामूली तीव्रता के 34 झटके आये। इसी संस्थान के आकलन के अनुसार वर्ष 2005, 2006 एवं 2007 में क्रमशः 38, 23 एवं 26 कंपन महसूस किये गये। अप्रैल 2015 में नेपाल में आया भूकम्प तथा 24 अक्टूबर, 2015 को पाकिस्तान व अफगानिस्तान में आया 7.8 तीव्रता का भूकम्प प्लेट की सक्रियता बढ़ने को दर्शाते हैं। तिरुवनंतपुरम स्थित सेंटर फार अर्थ साइंस के प्रो. सी. पी. राजेन्द्रन ने भी प्लेट की सक्रियता बढ़ने को सही बताते हुए देश भर में सतर्कता रखने हेतु कहा था।

अप्रैल, 2015 में नेपाल में आये विनाशकारी भूकम्प के संदर्भ आई.आई.टी. खड़गपुर के भूकम्प वैज्ञानिक प्रो. एस. के. नाथ ने कहा था कि “भूगर्भीय संरचनाओं में आ रहे बदलाव के कारण भूकम्प के क्षेत्रों का फिर से निर्धारण करना जरूरी हो गया है। कल तक देश के जो शहर भूकम्प के जोन तीन में थे, वे आज जोन चार में हो सकते हैं। वैसे भी भूकम्प मानव द्वारा बनाये नियम, कानून या जोन आदि को नहीं मानता।” कुछ वर्षों पूर्व तक दक्षिण भारत सुरक्षित था परंतु अब नहीं रहा। भविष्य में यह भी हो सकता है कि पूरा देश ही भूकम्प के प्रति संवेदनशील हो जाए। अभी देश में विकास की आंधी चल रही है, स्मार्ट शहर बनाये जा रहे हैं, मेट्रो रेल परियोजनाओं की डी.पी.आर. बन रही है, विदेशी पूंजी निवेश कई क्षेत्रों में बढ़ रहा है, कस्बे नगर व नगर महानगर बन रहे हैं एवं इंडिया डिजिटल हो रहा है। इन सभी में भूकम्प की संभावनाओं को प्राथमिकता देना जरूरी है। □



## मनुष्य-एक व्यक्ति

□ जे. सी. कुमारप्पा

मनुष्य अपनी कर्तृत्वशक्ति और साहसप्रियता के बावजूद व्यक्तिगत क्षणिक सुखों के पीछे बेतहाशा पड़ गया है! अपनी तेज रफ्तार में वह यह भूलता जा रहा है कि यह रास्ता उसे गहरी खाई की ओर ले जा रहा है, जिसमें गिरने से उसकी मौत निश्चित है।

**मनुष्य और इच्छा-स्वातन्त्र्य :** कुदरत की व्यवस्था कायम रखने या बिगाड़ने की कूबत अकेले मनुष्य में ही है; इसलिए हमें कुदरत के अन्य प्राणियों की व्यवस्था में न जाकर केवल मनुष्य की व्यवस्थाएं ही हमारे अध्ययन के लिए काफी हैं। यों तो कुदरत की व्यवस्था में खलल डालना आसान नहीं है, परंतु कुछ समय के लिए ही क्यों न हो, मनुष्य उस व्यवस्था में कुछ उथल-पुथल जरूर मचाता है। गहरे अभ्यास द्वारा संभव है कि हम कुदरत के तरीकों से गाढ़ा सहयोग स्थापित कर सकें और इस प्रकार अनावश्यक हिंसा टालकर, हम ज्ञानपूर्वक स्थाई व्यवस्था कायम करने में शायद कामयाबी हासिल न

कर सकें, तो भी उसे प्राप्त करने में प्रयत्नशील होने का समाधान हमें मिलेगा और साथ-ही-साथ हम लोगों के लिए अधिक सुख-निर्माण कर सकेंगे।

अन्य सब प्राणी मुस्तैदी से कुदरत के नियमों का पालन करते हैं। उन्हें अपनी 'इच्छा' को कार्यान्वित करने की विशेष गुंजाइश नहीं है। वे अपने जन्मजात स्वभाव के अनुसार काम करते हैं, जो हमेशा कुदरत के अनुकूल ही होते हैं। उनके जीवन का रास्ता रेलगाड़ी के समान है। जानवरों के जन्मजात स्वभाव के मुताबिक रेल की पटरियां रेलगाड़ी को ठीक रास्ते से ले जाती हैं। जब तक रेलगाड़ी पटरियों पर है, तब तक वह बिना खौफ, चाहे दिन हो या रात, चाहे पहाड़ हो या दर्रा, चाहे जंगल हो या मैदान, यदि चलती रहे, तो उसको दिशा-दर्शन किये बगैर वह अपने मुकाम पर पहुंच ही जायेगी।

अंडे में से बाहर निकलते ही बच्चा इधर-उधर घूमकर अपने पोषण योग्य अनाज के दाने चुगने लगता है। जब उसका पेट भर जाता है, तब वह अपनी मां के पंखों की छाया में आराम करता है। खतरे की जानकारी उसे आप-ही-आप होती है और वह सुरक्षित जगह में छिप जाता है। वह कभी भूख से अधिक नहीं खाता, चाहे खुराक कितनी भी जायकेदार क्यों न हो, और न वह कभी इन्द्रियों की लिप्सा शमन करने की कोशिश करता है। उसका सारा काम उसके जन्मजात स्वभाव से ही होता है, वह ज्ञानपूर्वक उसे नहीं करता।

जो प्राणी कुदरत के नियम मुस्तैदी से पालते हैं, वे शायद ही कभी बीमार पड़ते हों और जब कभी उन्हें हाजमे की शिकायत होती है, तो वे जन्मजात स्वभाव से ही ऐसे जाने हुए पौधे खा लेते हैं, जिससे या तो कै होकर या दस्त आकर वे तन्दुरुस्त हो जाते हैं।

मनुष्य की निस्वत मुश्किल यह है कि उसे 'स्वतंत्र बुद्धि' होती है और उसका उपयोग करने के लिए उसे विशाल क्षेत्र मौजूद है। यदि उस 'स्वतंत्र बुद्धि' का योग्य दिशा में

उपयोग किया जाय, तो वह ज्ञानपूर्वक कुदरत की इकाइयों में अधिक सहयोग निर्माण कर सकेगा। इसके विपरीत यदि ऊटपटांग रीति से 'स्वतंत्र बुद्धि' का उपयोग किया जाय, तो वह कुदरत की व्यवस्था में काफी खलबली मचाकर अंत में नष्ट हो जायेगा।

हम जन्मजात स्वभाव की रेल की पटरियों से तुलना करें, तो जब तक रेल के डब्बे पटरियों पर हैं, तब तक वे पटरियां डिब्बों को कभी इधर-उधर भटकने नहीं देतीं। पर 'स्वतंत्र बुद्धि' की देन में चाहे जहां भटक सकने की गुंजाइश है। पर इस गुंजाइश का यह मतलब नहीं कि हर जगह का भटकना खतरे से खाली ही होगा। 'स्वतंत्र बुद्धि' की तुलना साइकिल की सवारी से की जा सकती है। सिद्धांत रूप से साइकिल का सवार चाहे जिधर आजादी से जा सकता है। उसका दिशा-दर्शक यानी हैंडल उसके काबू में ही रहता है। फिर भी उसके भटकने के ऊपर उसका निजी विवेक और उसकी साइकिल की रचना, इनकी मर्यादाएं रहती ही हैं। यदि सवार चाहे कि मैं हवा में उड़ूं या पानी पर तैरूं, तो वह वैसा नहीं कर सकता। जमीन पर भी वह जहां चाहे नहीं जा सकता। उसे तो दूसरे लोगों के कायम किये हुए रास्ते या पगडंडी से ही जाना होगा। यदि वह हल-चले खेत में जाने की कोशिश करे, तो संभव है कि उसका अगला चक्र मिट्टी या हल की लीक में फँस जाय और सवार साइकिल के नीचे आ जाय। यदि वह कांटे के झाड़ों में से जाना चाहे, तो उसकी साइकिल के टायर पंक्चर हो जायेंगे। इस प्रकार उसकी सैद्धांतिक आजादी को मर्यादाएं लग जाती हैं और बुद्धिमान सवार उन्हीं के अंदर-अंदर रहता है। उसकी हलचलों पर इस प्रकार ज्ञानपूर्वक अंकुश रख सकने के लिए अनुशासन और ज्ञान की जरूरत है। उनके बिना जो यंत्र उसकी सुविधा के लिए बनाया गया है, वह उसे दुःखदायी साबित होगा। जो आदमी दिन के समय, जाने हुए रास्ते से, साइकिल पर

सवार होकर निकलेगा, वह पैदल गति से कई गुनी अधिक गति प्राप्त कर सकेगा।

उसी प्रकार केवल जन्मजात स्वभाव से प्रेरित प्राणियों की बनिस्बत स्वतंत्र बुद्धियुक्त मनुष्य बहुत कुछ अधिक काम कर सकेगा, बशर्ते कि वह अपनी उस बुद्धि का विवेक से काम लेना सीखे, न कि उसे अपनी इच्छाओं और लालसाओं की तृप्ति के पीछे भटकने दे। वह अपने आंतरिक प्रकाश के सहारे—याने अपने बुद्धि और दैवी अंश के संयोग से—या तो सिद्धि या विनाश की ओर ज्ञानपूर्वक अग्रसर हो सकता है। जिस प्रकार साइकिल-सवार यदि अँधेरे में या ऊबड़-खाबड़ जमीन पर चल पड़े, तो गिर पड़ेगा और शायद चोट भी खायेगा, उसी प्रकार यदि मनुष्य भी उपर्युक्त मर्यादाएं नहीं संभालेगा तो वह कुदरत और अपनी आत्मा के विरुद्ध काम करने का फल जरूर चखेगा। कुदरत का जो आदर करते हैं, उन पर वह रहम करती है, पर अपनी स्वतंत्र बुद्धि के घमण्ड में जो उसका निरादर करते हैं, उन्हें वह अत्यधिक कड़ी सजाएं देती है, यहां तक कि कभी-कभी उन्हें खत्म ही कर देती है।

**अपनी बुद्धि का सदुपयोग या दुरुपयोग :** आज मनुष्य का जीवन इतना विविध है कि उसकी बुद्धि के उपयोग से की जा सकने वाली तमाम प्रवृत्तियों का परिचय देना यहां संभव नहीं। हम तो यहां पर केवल प्राथमिक आवश्यकताओं से, जैसे भूख, प्यास आदि से संबंध रखने वाली कुछ महत्त्व की बातों पर ही विचार करेंगे। अन्य सब मामलों में किस जगह बुद्धि का सदुपयोग हुआ और किस जगह दुरुपयोग, यह पाठक स्वयं सोचकर ही निर्णय करें।

**भूख**—सबसे प्रधान और अत्यन्त प्राथमिक विकार भूख है। मनुष्य का शरीर एक यंत्र के समान है। उसे चालू रखने के लिए ईंधन चाहिए, टूट-फूट और घिसाई के लिए मरम्मत की व्यवस्था चाहिए और घर्षण कम होने के लिए स्नेहन भी चाहिए। इन सब

आवश्यकताओं की द्योतक भूख है। बास और स्वाद के बल पर प्राणी यह जान लेता है कि किन चीजों से उसकी जरूरत पूरी होगी और उसका शरीर कार्यक्षम बना रहेगा।

सामान्यतः जो प्राणी कुदरती जीवन व्यतीत करते हैं, वे अपने जन्मजात स्वभाव के मुताबिक चलते हैं। वे जिन्दा रहने के लिए खाते हैं और तन्दुरुस्त रहते हैं। पर बदनसीबी से मनुष्य अपनी बुद्धि का उपयोग केवल भूख दूर करने के लिए नहीं, बल्कि अपनी जीभ के चोंचले पूरे करने के लिए करता है और खास मसालेदार और स्वादिष्ट पदार्थ बनाता है। अच्छे स्वाद के मोह में वह बहुधा आवश्यकता से अधिक खा लेता है यानी वह खाने के लिए जिन्दा रहता है। जीभ के इन चोंचलों को पूरा करने की प्रवृत्ति के कारण ही लोगों को बहुत-सी बीमारियां हो जाया करती हैं। अत्यधिक खुराक हाजमे को ही बिगाड़कर गड़बड़ियां पैदा करती हैं। इतना ही नहीं, अच्छी खुराक भी आवश्यकता से अधिक खाने पर नुकसानदेह या कभी-कभी विषैली भी साबित हो सकती है, जिससे काफी तकलीफ और असामयिक मौत की भी संभावना रहती है।

**प्यास**—जब अन्न हजम हो जाता है, तब वह द्रव पदार्थ के रूप में शरीर में खींच लिया जाता है। पौष्टिक तत्त्व खून के द्वारा उन स्थानों पर ले जाये जाते हैं, जहां उनकी जरूरत होती है और वही खून अन्य जगहों की मैल फेफड़ों में ले जाता है, जहां की हमारी सांस द्वारा आयी हुई प्राणवायु द्वारा वह जल जाता है। ये सब काम करते हुए खून में का पानी का बहुत-सा अंश भाप बनकर कुछ तो हमारी सांस द्वारा और कुछ पसीने के द्वारा बाहर निकल जाता है। पसीना निकलने से शरीर के उष्णतामान पर नियंत्रण होता है। प्यास दर्शाती है कि खून में का बहुत-सा पानी इस प्रकार उड़ गया है और इसलिए उसकी जगह हमें बाहर का काफी पानी लेना जरूरी है। यह पानी शरीर के विभिन्न भागों में केवल

पौष्टिक तत्त्व पहुंचाने का ही काम नहीं करता, वरन् साथ-ही-साथ वह पेशाब द्वारा उसमें की मैल को बाहर फेंककर खून को साफ करता है और चमड़ी की सहायता से शरीर के उष्णतामान पर नियंत्रण रखता है।

अपनी बुद्धि का दुरुपयोग कर मनुष्य इस स्वाभाविक विकार का नशीली चीजों द्वारा शमन करता है, जिससे शरीर में कई किस्म के जहर फैल जाते हैं। इनके कारण ज्ञान-तंतु बधिर हो जाते हैं; विचार-शक्ति कमजोर हो जाती है और अंत में मनुष्य अपना स्वास्थ्य गंवा बैठता है। इस लत से मनुष्य खुद की बेइज्जती तो कर ही लेता है, पर अपने कुटुम्ब का सर्वनाश भी कर बैठता है। आधुनिक समाज में पाये जाने वाले कई दुर्गुणों और पापों की जड़ शराब ही है।

**बास**—इसी प्रकार वास्तव में बास का उपयोग खाद्य पदार्थ का ठिकाना ढूंढने के लिए करने के बजाय लोग नस सूँघने की आदत डालकर उसका दुरुपयोग करते हैं। नस या तमाखू सूँघने से उस क्षण भले ही आनन्द या तरोताजगी मालूम देती हो, पर अंत में उसका कलेजे तथा दिमाग पर बुरा असर हुए बिना नहीं रहता।

**लैंगिक भावना**—प्राणियों की तमाम प्रवृत्तियों में शायद यह भावना प्रबलतम है। इसकी जड़ नर-मादे के उस पारस्परिक आकर्षण में है, जिसके कारण उनका संयोग होता है और उनका वंश कायम बना रहता है। करीब सभी पक्षी और बहुत से अन्य प्राणी भी इसी प्रवृत्ति को लेकर अपना बहुरंगी और भावुक जीवन प्रकट करते हैं, इतना ही नहीं; बल्कि जोड़ी-जोड़ी से अलग रहकर अपने बच्चों के लालन-पालन की कोशिश करते हैं। कुदरती तौर पर नर-मादों का संयोग किसी खास समय ही और वह भी औलाद पैदा करने के लिए ही होता है।

पर मनुष्य अपनी इच्छा के बूते पर जानवरों से भी बदतर बन गया है क्योंकि उसने इस लैंगिक भावना को अपने

इन्द्रियजन्य सुख का साधन बना लिया है। ऐसा करते समय औलाद पैदा करने की कल्पना भी उसके मगज में नहीं रहती। केवल संतान के लिए समागम करने के बजाय संतान को समागम का अनिच्छापूर्वक प्राप्त फल हो जाता है। कुदरत के कानून की इस प्रकार तौहीन करने के कारण कुदरत ऐसे लोगों को सूजाक, गर्मी आदि भयानक रोगों का शिकार बनाकर बड़ी कड़ी सजा देती है। अकेले कानून भंग करने वालों को ही नहीं, बल्कि उनकी औलाद को भी वह अपने चपेट में ले लेती है।

**कल्पना-शक्ति**—कल्पना-शक्ति से न देखी हुई चीजों का अपने मनचक्षुओं के सामने चित्रण करना और कल्पना की सहायता से सुंदर-सुंदर चित्रों का निर्माण करना, यह अकेला मनुष्य ही कर सकता है। इस शक्ति का स्वाभाविक तौर से उपयोग करने के बजाय लोग अफीम, भांग, गांजा, चरस आदि की सहायता से कृत्रिम उत्तेजना पैदा करते हैं। इनकी आदत भी शराब की आदत जैसी ही घातक है। इनकी लत लगे हुए लोग कोई भी काम करने योग्य नहीं रह जाते और अंत में अपना तथा अपने अवलम्बियों का सर्वनाश कर बैठते हैं।

**सृजन-शक्ति**—मनुष्य को निर्माण करने वाले ईश्वर से वह बिल्कुल नजदीक का रिश्ता रखता है, क्योंकि उसे दी हुई बुद्धि से वह सारी शक्तियों को अपने फायदे के लिए कामों में जुटा सकता है। उसका सबसे अच्छा उपयोग कर सकने के लिए उसे कुदरत के रास्तों का अवलम्बन करना पड़ेगा, अन्यथा उसका नाश निश्चित ही समझिये। हम अपनी निजी शर्तों पर कुदरत का सहयोग नहीं प्राप्त कर सकते। ऐसी किसी भी कोशिश से सर्वनाश निश्चित ही है।

सूर्य की स्वाभाविक उष्णता से समुद्र के पानी की भाप बनती रहती है। सूर्य की शक्ति द्वारा मीठे पानी की भाप ऊपर उठ जाती है और नमक नीचे रह जाता है। भाप ऊपर

जाकर, ठंड के कारण जमकर बादल बन जाती है और फिर पानी के रूप में पृथ्वी पर टपकती है। यह पानी जब पहाड़ों पर पड़ता है, तब उसमें काफी सुप्तशक्ति रहती है; क्योंकि कुछ तो उसकी ऊंचाई और कुछ पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण वह पानी नीचे बहता आयेगा और अंत में फिर से समुद्र में मिल जायेगा। समुद्र में मिलने के पहले यदि मनुष्य चाहे, तो वह उस नदी के जल की शक्ति का अपने फायदे के लिए उपयोग करने की तरकीबें निकाल सकता है। नदी के बिल्कुल शुरू में वह नदी का पानी बांध-बांधकर रोक सकता है और इस प्रकार उस जल की सुप्तशक्ति को संचित कर जब, जहां और जैसे उसका जी चाहे उपयोग कर सकता है। पहाड़ी मुल्कों में अक्सर पानी की शक्ति का ऐसा उपयोग किया जाता है अथवा यदि वह चाहे, तो बड़े-बड़े यंत्रों द्वारा इस शक्ति से बिजली पैदा कर सकता है! यह बिजली फिर कई मील दूरी पर के गांव, शहर और कस्बों में तारों द्वारा ले जाकर उसका रोशनी के लिए या पानी के पम्प, बिजली की मोटरें या अन्य कारखाने चलाने के लिए उपयोग किया जा सकता है। इतना कर लेने के बाद भी पानी के प्रवाह को सिंचाई आदि के लिए या नावों द्वारा आवागमन के उपयोग में लाया जा सकता है। इस प्रकार मनुष्य नदी के प्रवाह को रोककर सैकड़ों लोगों को मालामाल बना दे सकता है और इतना सब करते हुए भी उसका काम कुदरत के खिलाफ न होगा।

यह मनुष्य की बुद्धि का सदुपयोग कहलायेगा, क्योंकि उसने ऐसी परिस्थिति निर्माण कर दी कि कुदरत को अपने ही रास्ते से काम करते हुए उससे सहयोग करने के लिए मजबूर होना पड़ा। इसलिए वह उसका जीवन अधिक सुखी और समृद्ध बना देती है।

पर कभी-कभी इनसान अपनी बुद्धि का गलत इस्तेमाल करके कुदरत के विरुद्ध काम करता है। वह खुद के हौसले के लिए कुदरत के कानूनों को तोड़ता रहता है। मसलन वह

चावल छांटने और गेहूं का आटा पीसने के लिए यंत्रों का इस्तेमाल करता है, ताकि चावल और आटा मोती के समान सफेद दिखाई दें। वास्तव में चावल सफेद दिखाई देने का आग्रह गलत सौन्दर्य-दृष्टि का द्योतक है, पर मनुष्य अपनी ही उधेड़बुन में इसे महसूस नहीं करता। पर इस प्रकार चावल को सफेद बनाकर वह कुदरत का संतुलन बिगाड़ देता है, क्योंकि कुदरत एक दाने में पोषकता के लिए अंकुर और हाजमे को मदद करने के लिए उसके ऊपर भूसा या चोकर रखती है। ये दोनों महत्त्व के द्रव्य छांटने से नष्ट हो जाते हैं। इसलिए कुदरत का विरोध कर जो लोग छांटे या छंटे हुए चावल खाते हैं, उन्हें जल्द ही बेरी-बेरी नाम का रोग हो जाता है, जो काफी तकलीफ देता है और अंत में मौत के घाट उतार देता है।

इसी प्रकार कुदरत हमें खाने के लिए सेब, खजूर, अंगूर आदि ताजे फल देती है। उन्हें वैसे का वैसे खाने के बजाय मनुष्य उनका रस निकालकर उन्हें सड़ाकर और उनकी शराब या ताड़ी बनाकर पीता है, जिससे उसे कृत्रिम तरावट मालूम होती है। जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, इन चीजों का इस्तेमाल करने वालों को कुदरत कड़ी सजा देती है।

मनुष्य अपनी प्रजनन-शक्ति का अपने इन्द्रियजन्य सुखों की पूर्ति के लिए उपयोग करता है, न कि कुदरत के मकसद को पूरा करने के लिए। कुदरत चाहती है कि स्त्री-पुरुष-समागम वंश-वृद्धि के लिए हो, पर मनुष्य संतति-प्रतिबंधक साधन ईजाद करके केवल वैषयिक सुख लूटना चाहता है, उसके आगे की जिम्मेदारी नहीं उठाना चाहता। पर यहां भी अत्यधिक अत्याचार करने से मनुष्य केवल अपनी प्रजनन-शक्ति ही नहीं खोता, बल्कि उसके ज्ञान-तंतु शिथिल हो जाते हैं और वह पागल भी हो जाता है।

कुदरत का विरोध करने से कैसी-कैसी मुसीबतें आती हैं, इनके और अधिक

उदाहरण देने की जरूरत नहीं। मनुष्य का आधुनिक जीवन उनसे भरा पड़ा है। मनुष्य अपनी कर्तृत्वशक्ति और साहसप्रियता के बावजूद व्यक्तिगत क्षणिक सुखों के पीछे बेतहाशा पड़ गया है! अपनी तेज रफ्तार में वह यह भूलता जा रहा है कि यह रास्ता उसे गहरी खाई की ओर ले जा रहा है, जिसमें गिरने से उसकी मौत निश्चित है। चूंकि बुद्धि का इस किस्म का दुरुपयोग विनाश की ओर ले जाता है, इसलिए हमारा वैसा जीवन क्षणभंगुर कहा जायेगा। वह कुदरत के सनातन नियमों के विरुद्ध है और इसलिए स्थाई व्यवस्था में बहुत खलबली मचा देता है।

मनुष्य का तमाम भावनाओं में सर्वोच्च भावना प्रेम की है। वह अपनी जाति की निरपेक्ष सेवा के द्वारा उसे अभिव्यक्त करता है। मातृ-प्रेम में उसकी थोड़ी-सी झांकी दिखायी देती है। इस प्रकार दूसरे व्यक्तियों की सेवा करके वह बहुत ऊंचे दर्जे का काम करता है और ईश्वरीय अंश को मानो दुनिया में अवतीर्ण करता है। वह अपनी अतिरिक्त कार्य-शक्ति का दूसरे के फायदे के लिए उपयोग करता है, ताकि उन्हें अधिक सुख और शांति मिले।

पर बुद्धि के दुरुपयोग से मनुष्य की यह भी प्रवृत्ति विकृत हो जाती है और मनुष्य अपने पड़ोसी पर प्रेम करने का शाश्वत धर्म छोड़कर स्वार्थ और लिप्सा में लिप्त हो जाता है और यही अंत में जाकर दुनिया की चीजों की मिलिक्यत स्थापन करने की प्रवृत्ति में परिवर्तित हो जाती है। इसलिए अतिरिक्त शक्ति, अतिरिक्त सम्पत्ति के रूप में उसके पास इकट्टी हो जाती है, जिसका उपयोग वह अपने स्वार्थ के लिए ही करता है। पर यह संचित सम्पत्ति यदि वह ऐशो-आराम और ठाट-बाट में रहकर उड़ाना चाहे, तो वह बहुत दिन नहीं चल सकती और इस किस्म की संचित सम्पत्ति जब वारिसों को मिलती है, तब भाई-भाई उसके लिए अक्सर एक-दूसरे से लड़ मरते हैं और अंत में बरबाद हो जाते हैं। □

महादेव देसाई-जयंती  
1 जनवरी पर विशेष

## मोहन और महादेव

□ नारायण देसाई

**काका का व्यक्तिमत्त्व बापू से एकदम अलग और स्वतंत्र था। बापू का विभूतिमत्त्व प्रखर सूर्य जैसा था, तो काका का चन्द्रमा के जैसा शीतल था। बापू अनासक्त कर्मयोगी थे, तो काका रसिक भक्त। बापू हिमालय की तरह ऊंचे और उज्ज्वल थे, तो काका गंगा के समान करुणा से भरे थे। इतना भिन्न व्यक्तिमत्त्व होते हुए भी दोनों में अजीब आत्मिक अभिन्नता थी।**

बापू के पास आने के बाद इक्कीस वर्षों में काका ने दो बार छुट्टी ली थी। पहली बार टाइफाइड हो जाने पर और दूसरी बार ब्लडप्रेसर (रक्तचाप) बढ़ जाने पर। काका के पिताजी का देहांत हुआ, तब भी काका का काम जारी ही था। इक्कीस साल के बाद की बीमारी में बाकायदा छुट्टी लेकर काका आराम करने शिमला गये। इसके बाद की तीसरी बीमारी में तो वे सदा के लिए छुट्टी मनाने चले गये। यह दो अपवाद छोड़कर पचीस वर्षों में काका ने एक भी रविवार, दीवाली, होली या गरमी की छुट्टी नहीं ली थी।

सन् 1938 में जब मगनवाड़ी में रहते

थे, तब काका का रक्तचाप बढ़ गया था। बीच-बीच में चक्कर आने लगे थे। इसका प्रमुख कारण था वर्धा की कड़ी गरमी। धूप में काका रोज वर्धा से सेवाग्राम पैदल आते-जाते थे। कभी-कभी तो दो बार आना-जाना हो जाता था। 22 मील की पैदल यात्रा हो जाती थी! वर्धा में गरमी के मौसम में 115 से 120 डिग्री तक तापमान हो जाता है।

इतने परिश्रम के बाद बापू के काम का बोझ तो काका ही ढो सकते थे। पिछले दस-पंद्रह वर्षों में मैंने काका को हर रोज पंद्रह घंटे से कम काम करते नहीं देखा था। जब हम मगनवाड़ी से सेवाग्राम रहने गये, तब वर्धा से सेवाग्राम जाने-आने का श्रम बच गया। लेकिन उतने घंटों का काम बढ़ गया। दिनभर का काम पूरा करके रात को सोने से पहले कोई-न-कोई पुस्तक पढ़ने की काका की आदत थी। वाचन के संबंध में वे हमेशा अद्यतन रहते थे। एक वालजीभाई देसाई और दूसरे प्यारेलालजी को छोड़कर बापू के आश्रम में काका से अधिक पढ़ने वाला कोई नहीं था।

काका को आम तौर पर जो काम करने पड़ते थे, उनमें मुख्य रूप से रोज की डाक देखकर बहुत सारे पत्रों के जवाब लिखना, बापू से मिलने आने वालों के साथ पहले बात करके बापू का समय बचाना, मुलाकातों की रिपोर्ट लिखना, 'हरिजन' साप्ताहिक के लिए लेख लिखना या अनुवाद करना, ये काम थे। हर रोज के इन कामों के अलावा कभी कोई पुस्तक लिखना, दैनिक समाचार-पत्रों के लिए बीच-बीच में लेख लिखकर देना, या सभाओं में भाषण के लिए जाना इत्यादि अतिरिक्त काम माने जायेंगे।

बापू के साथ के काम का प्रमाण भी असाधारण था। इतने सारे काम काका कैसे कर पाते थे, यह एक बड़े आश्चर्य का विषय था। मुझे लगता है कि बापू और काका के बीच जो असाधारण एकात्मता सध गयी थी, उसी कारण यह बन पाता था। इस संबंध में दास्यभक्ति और सख्यभक्ति के लक्षणों का अजीब मेल था। सन् 1915 में पहली बार

काका बापू से मिलने अहमदाबाद के पास के कोचरब-आश्रम में गये, तब काका की लिखी हुई सामग्री को देखकर बापू ने कहा, 'तुम्हारा स्थान तो मेरे ही पास है।' उस दिन एलिस ब्रिज पर से वापस आते समय काका ने स्व. नरहरिभाई परीख से कहा, 'सारी जिन्दगी किसी के चरणों के पास बैठकर बिताना चाहूँ तो इस पुरुष के पास बिताऊँ ऐसा लगता है।' प्रथम दृष्टिभेंट में जो तारा-मैत्रक का नाता बँध गया, उसका धीरे-धीरे परिपाक एकात्मता में हो गया।

काका का व्यक्तिमत्त्व बापू से एकदम अलग और स्वतंत्र था। बापू का विभूतिमत्त्व प्रखर सूर्य जैसा था, तो काका का चन्द्रमा के जैसा शीतल था। बापू अनासक्त कर्मयोगी थे, तो काका रसिक भक्त। बापू हिमालय की तरह ऊँचे और उज्ज्वल थे, तो काका गंगा के समान करुणा से भरे थे। इतना भिन्न व्यक्तिमत्त्व होते हुए भी दोनों में अजीब आत्मिक अभिन्नता थी।

कुछ उदाहरण लीजिए। साहित्य की दृष्टि से देखा जाय तो बापू यथार्थवादी थे, शब्दलाघव में सम्राट थे। एक शब्द से काम चलता हो तो दो शब्दों का उपयोग करने वाले। काका थे स्वैर विहार करने वाले। समुचित अलंकारयुक्त रसमय शैली से लिखने वाले। फिर भी लेखों में बापू की शैली को काका ने ठीक आत्मसात् किया था। 'हरिजन' या 'हरिजन बंधु' के कई पाठकों के पत्र आते थे कि लेख के अंत में एम. के. जी. (मो. क. गां.) या एम. डी. (म. दे.) अक्षर पढ़ने तक पता ही नहीं चलता था कि लेख बापू का है या महादेवभाई का है। 'हरिजन' पत्र में जो भी काका लिखते, वह बापू को बताये बिना प्रेस में नहीं भेजते थे। बापू भी उनके लेखों को बारीकी से पढ़ते और आवश्यक सुधार भी करते थे। लेकिन कई बार ऐसा होता था कि काका का लिखा हुआ लेख बापू के देखने के लिए रखा हो, उसे पढ़कर बापू अपना हस्ताक्षर कर देते और वह लेख बापू का बन जाता था। सन् 1942 के आंदोलन के पूर्व

इस प्रकार का एक लेख 'एन अपील टु एव्री ब्रिटेन' (An appeal to every Britian) था और शायद "एन अपील टु एव्री जापानीज" (An appeal to every Japanese) भी ऐसा ही लेख था।

बापू के साथ चर्चा में अधिक समय नष्ट न हो, इस दृष्टि से राजाजी, भूलाभाई और कभी-कभी जवाहरलालजी भी काका के साथ चर्चा करके बहुत सारा काम निपटा लेते थे। उन दिनों सरदार का ट्रंक कॉल न आया हो, ऐसा शायद ही कोई दिन जाता था। 'क्यों? बुढ़्ढा क्या कहता है?' इस वाक्य से बात शुरू होती थी और पूरे छह मिनट तक चलती थी।

काका शीघ्र-लिपि नहीं जानते थे, लेकिन उनकी लिखने की गति असामान्य थी। कई शब्द वे संक्षेप में लिखते थे, लेकिन बापू के मुँह से निकला एक शब्द भी वे छोड़ते नहीं थे। एक बार बापू से चर्चा करने के लिए कुछ अमरीकी मित्र आये थे। काका अपने ढंग से उस चर्चा का नोट ले रहे थे। अमरीकी मित्रों में से एक बहन शीघ्रलिपि में लिख रही थी। दूसरे दिन काका और वह बहन अपनी-अपनी रिपोर्ट एक-दूसरे से मिलान करने लगे। काका का नोट देखकर वह बहन बोली, 'आपने तो मुझे बिलकुल हरा दिया—'You simply me hollow!'

बापू के भाषणों की रिपोर्ट लिखते समय काका को सिर्फ बापू जो बोलते थे, उतना ही नहीं लिखना होता था। बापू का भाषण अक्सर सिलसिलेवार या व्यवस्थित नहीं रहता था। उनके भाषण में सहजता होती थी, लेकिन क्रमबद्धता नहीं होती थी। काका भाषण की रिपोर्ट लिखते समय उसको ठीक कर लिया करते थे। फैजपुर-कांग्रेस के समय के बापू के हिन्दी भाषण को काका ने सीधे प्रेस-टेलिग्राम फार्म पर अंग्रेजी में ही लिख लिया, ताकि भाषण समाप्त होते ही उसे प्रेस के लिए रिलीज किया जा सके। कभी-कभी तो बापू के निकट के साथी भी, बापू ने भाषण में क्या कहा, यह स्पष्ट रूप से नहीं बता सकते थे। 'महादेवभाई की रिपोर्ट आयेगी, तब पढ़

लेंगे।' ऐसा कहकर संतोष मान लेते थे।

इस तादात्म्य की कल्पना सबको नहीं आ सकती थी। एक बार एक पंजाबी भाई बापू से मिलना चाहते थे। उनके साथ बात करके काका ने उस भाई से कहा कि 'अब आपको बापू से मिलने की आवश्यकता नहीं है।' लेकिन उस भाई को संतोष नहीं हुआ। दुबारा काका से चर्चा करके वह वापस गया। लेकिन जाते-जाते आश्रम वालों को सुनाकर गया कि 'मैं महादेवभाई को जरूर गोली से मार दूंगा।' यह सुनकर मेरी मां घबरा गयीं, लेकिन काका ठहाका मारकर हँसने लगे।

एक बार बापू और काका की एकात्मता का एक अजीब प्रसंग देखा। बापू अपनी कुटी के सामने खड़े थे। काका के साथ कुछ बात हो रही थी। इतने में उनको कुछ लिखने की याद आयी। काका से कहा, 'महादेव, लिखो।' काका ने वहीं खड़े-खड़े लिखना शुरू किया। बापू बोलते गये और काका लिखते गये। मैं बगल में खड़ा देख रहा था। कुछ देर के बाद बापू के बोलने की गति से काका की लिखने की गति तेज हो गयी, यानी आगे बापू क्या बोलेंगे, इसका अनुमान लगाकर काका ने उसे पहले ही लिख दिया। बीच में बापू ने एक शब्द ऐसा कहा, जो काका ने लिखा नहीं था, तो काका ने बापू को रोककर कहा, 'बापू, जरा ठहरिये। मैंने इस जगह पर दूसरा ही शब्द लिख दिया था, आपने इस शब्द का प्रयोग क्यों किया?' बापू एक क्षण के लिए विचार में पड़े। लेकिन वे भी शब्दों के बारे में बड़े आग्रही थे। 'महादेव, तुमने यह शब्द लिखा ही कैसे? मेरे मुँह से तो वही शब्द निकला, जो मैंने तुमको लिखाया।'

पत्र लिखाने में जितना समय गया, उससे कहीं अधिक समय उस चर्चा में गया कि बापू की भाषा में कौन-सा शब्द ठीक बैठता है। जहां तक मुझे स्मरण है, शब्द बापू का ही रखा गया। लेकिन महादेवभाई के लिखे शब्द में भी सार था, यह बापू ने बाद में स्वीकार किया ही। □

## कितने युवजन

□ शुभू पटवा

युवजनों का स्थान समाज में सर्वोपरि हो—जहां यह देखना नितांत आवश्यक है, वहीं युवजनों के लिए भी यह आवश्यक है कि वे समष्टिगत स्तर पर जो कुछ करें—उसे निष्काम कर्म मानते हुए करें। निष्काम भाव से जब भी कुछ किया जाता है, तो वह एक सहज-क्रिया होती है। इसी सहज-क्रिया से 'अहं' का विसर्जन संभव है। अहं के विसर्जन से चित्त की जैसी शुद्धि होती है, उसी में वैयक्तिक-उन्नति सन्निहित है, जो समष्टि के लिए भी हितकर सिद्ध हो सकती है।

क्या यह कल्पना की जा सकती है कि कोई समाज युवजन-विहीन होकर अपना अस्तित्व बनाए रख सकता है? किसी भी काल में समाज का अस्तित्व युवजनों पर ही आधारित रहा है। युवजन ही वह वर्ग है, जो हर प्रकार की बरदाश्तगी के बावजूद अपार आनंद की अनुभूति कर सकता है। शैशव और किशोर अवस्था पार कर जब यौवन दस्तक देता है, तो वह अवस्था शारीरिक शक्ति, मानसिक तेजस्विता, नैतिक बल और शौर्य से सराबोर होती है। यही वह समय होता है, जब एक युवा को अपने कर्तव्य और दायित्वबोध का अहसास होने लगता है। इन्हीं घड़ियों में समाज की अपेक्षाएं व्यग्रता के साथ बलवती होती हैं और यही वह काल है जब 'युवजन' कसौटी पर होता है।

आज का 'युवजन' भी काल की निर्मम कसौटी पर है। उसका नैतिक बल, उसकी शारीरिक क्षमता, उसकी मानसिक तेजस्विता, उसका शौर्य और वीर्य उसमें यथारूप विद्यमान हैं, पर तब भी लगता है कि कुछ खो गया है। कुछ ऐसा अधकचरा या अधूरा है, जो समाज को रुग्ण बनाए हुए है। जब देश गुलाम था—तो इसके कारण स्पष्ट थे, लेकिन तब देश की तरुण-शक्ति की अपार क्षमता पग-पग पर प्रकट भी होती रही थी। आज हम गुलाम नहीं हैं, स्वतंत्रता के उपभोग में आधी-सदी पार कर गये हैं, पर रुग्ण क्या पहले से अधिक नहीं हो गए हैं? हम अपनी ही बुद्धि से समीक्षा करें। हमारे शास्त्र भी यही कहते हैं—पन्ना समिक्खए।

भारत की गुलामी समष्टिगत साधना के विलोपन का परिणाम थी। सही है कि कोई भी समाज बिना व्यक्ति के नहीं हो सकता, पर समग्र समाज की उन्नति के बिना व्यक्ति की उन्नति का भी कोई अर्थ नहीं रह जाता। गुलामी के दिनों को याद करें तो पायेंगे कि निजी तौर पर अनेक व्यक्ति समर्थ रहे होंगे, पर साझा तौर पर समाज की अवस्था जर्जर-हाल ही थी। आजादी के बाद यह उम्मीद स्वाभाविक थी कि समाज जर्जरावस्था से मुक्त होगा, वह सशक्त और उन्नत होगा। पर, आज हम देख रहे हैं कि व्यक्तिगत तौर पर अनेक जनों के सामर्थ्यवान-शक्तिमान होते हुए भी सामाजिक स्तर पर विखंडन, विषमता और विग्रह के अजगर का मुंह पहले से कहीं अधिक बड़ा और भयावह स्तर पर खुलता जा रहा है। ऐसा क्यों हो रहा है?

लोकतंत्र की शक्ति तो 'सामूहिक जिम्मेदारी' के सिद्धांत में निहित है। सत्ता और शक्ति के विकेन्द्रीकरण में ही लोकतंत्र की सफलता और सुदृढ़ता सुनिश्चित हो सकती है। एक सार्वभौमिक गणराज्य के रूप में भारत की साख दुनिया की नजर में जो भी हो, अपने ही देश में हमारी जो अवस्था है—हमें अपने ही आईने में अपना चेहरा देख लेना चाहिए। हम ही तय करें कि हम कितने पानी में हैं?

जिस सामाजिक-वृत्ति का विकास स्वाधीनता के बाद हम में होना चाहिए था—वह नहीं हो सका है और अब जो हालात बन रहे हैं, वे सामाजिक और समष्टिगत विकास के कम तथा वैयक्तिक उन्नति के अधिक प्रतीत हो रहे हैं।

उदारीकरण में यही तो होता है। इसके चलते सामाजिक-वृत्ति का सशक्तिकरण कभी नहीं हुआ करता। व्यक्ति के ही बलशाली होने की संभावना प्रबल होती है। पराधीनता का कारण भी सामाजिक-वृत्ति का अभाव ही होता है—इसमें कोई संशय नहीं। तो क्या हम प्रच्छन्न पराधीनता की दशा की ओर अग्रसर हो रहे हैं? हम अपनी बुद्धि से समीक्षा करें—'पन्ना समिक्खए।'

जैसा कि कहा जा चुका है—युवजन ही वह वर्ग है, जो बरदाश्तगी की हद तक जा सकता है। कहा जाना चाहिए कि अब तक उसने सब सहा, पर अब उसे अपना श्रेयस् तय करना ही चाहिए। हमारे शास्त्र कहते हैं—'जं छेयं तं समायरे—जो श्रेयस् व कल्याणकारी हो, उसी का आचरण करो।' श्रेयस् और कल्याणकारी क्या है? युवजनों के सम्मुख यही विचारणीय है।

आज का युवजन अबूझ भटकाव की अवस्था में है। एक तरफ वह भौतिक संसाधनों की चकाचौंध से विस्फारित है और उसी में मुग्ध है। अन्यत्र कुछ सूझ नहीं रहा है। दूसरी तरफ ऐसा युवजन वर्ग भी है—जो कुंठित और विलगित है। उसके सामने कोई अवसर नहीं है। अपना भविष्य उसे लुंठित प्रतीत हो रहा है। आतंकवाद, हिंसा, अनाचार के रूप में जो विग्रह दिखाई दे रहा है—उसका निमित्त भी यही वर्ग है। दोनों ही वर्गों के युवजनों के लिए किसी 'श्रेयस्' की जरूरत है। युवजनों की अजस्र शक्ति का समुचित उपयोग कैसे हो ताकि वह समष्टिगत विकास का, साझा शक्ति का आधार बन सके। इस दृष्टि से यह देखना जरूरी है कि क्या समाज उसे यथोचित आदर और श्रद्धा प्रदान कर रहा है? बिना श्रद्धा व आदर के दायित्व और→

## हमारा राष्ट्रीय

### महापाप

#### □ स्वामी विवेकानंद

मनुष्य अपने भाई को पतित बनाकर क्या स्वयं पतित होने से बच सकता है?...क्या कोई व्यक्ति स्वयं का किसी प्रकार अनिष्ट किये बिना दूसरों को हानि पहुंचा सकता है? ब्राह्मण और क्षत्रियों के ये ही अत्याचार चक्रवृद्धि ब्याज के सहित अब स्वयं के सिर पर पतित हुए हैं एवं यह हजारों वर्ष की पराधीनता और अवनति निश्चय ही उन्हीं के कर्मों के अनिवार्य फल का भोग है।

→ कर्तव्य कभी जागृत नहीं हो सकता।

युवजनों का स्थान समाज में सर्वोपरि हो—जहां यह देखना नितांत आवश्यक है, वहीं युवजनों के लिए भी यह आवश्यक है कि वे समष्टिगत स्तर पर जो कुछ करें—उसे निष्काम कर्म मानते हुए करें। निष्काम भाव से जब भी कुछ किया जाता है, तो वह एक सहज-क्रिया होती है। इसी सहज-क्रिया से 'अहं' का विसर्जन संभव है। अहं के विसर्जन से चित्त की जैसी शुद्धि होती है, उसी में वैयक्तिक-उन्नति सन्निहित है, जो समष्टि के लिए भी हितकर सिद्ध हो सकती है। यही वह अवसर है—जब हमारा युवजन एक नये

में समझता हूं कि हमारा सबसे बड़ा राष्ट्रीय पाप जनसमुदाय की उपेक्षा है, और वह भी हमारे पतन का एक कारण है। भारत में दो बड़ी बुरी बातें हैं। स्त्रियों का तिरस्कार और गरीबों को जाति-भेद द्वारा पीसना।

तुम अपने देश के लोगों की ओर एक बार ध्यान से देखो तो, मुंह पर मलिनता की छाया, कलेजे में न साहस, न उल्लास, पेट बड़ा, हाथ-पैरों में शक्ति नहीं; डरपोक और कायर। यथार्थ राष्ट्र जो झोपड़ियों में निवास करता है, अपना पौरुष विस्मृत कर बैठा है, अपना व्यक्तित्व खो चुका है। इस भारतभूमि में जनसमुदाय को कभी भी अपनी आत्म-स्वत्व-बुद्धि को उद्दीप्त करने का मौका नहीं दिया गया। हिन्दू, मुसलमान या ईसाई के पैरों से रौंदे वे लोग यह समझ बैठे हैं कि जिस किसी के पास पैसा हो, वे उसी के पैरों से कुचले जाने के लिए ही पैदा हुए हैं।

वे लोग जो किसान हैं, वे कोरी, जुलाहे जो भारत के नगण्य मनुष्य हैं, विजाति-विजित स्वजाति-निन्दित छोटी-छोटी जातियां हैं, वही लगातार चुपचाप काम करती जा रही हैं, अपने परिश्रम का कुछ भी नहीं पा रही हैं।

फिर जिनके शारीरिक परिश्रम पर ही ब्राह्मणों का आधिपत्य, क्षत्रियों का ऐश्वर्य और वैश्यों का धन-धान्य निर्भर है, वे कहाँ हैं? समाज का मुख्य अंग होकर भी जो लोग सदा

अर्थ, नये रस और नये आनंद से समाज को आप्लावित कर सकता है।

जन्म और जीवन की सार्थकता भोग-विलास में नहीं है। असंयम और अकर्मण्यता से किसी भी वर्ग का कल्याण नहीं हो सकता। युवजन का अर्थ ही संयम और कर्मशीलता है। पुरुषार्थहीन भाग्यवाद व्यक्ति को कायर और कूपमंडूक ही बनाता है। रचनात्मक-संघर्ष की जिजीविषा उससे पैदा नहीं हो सकती। युवजन का स्वधर्म ही कर्मशीलता और संयम में निहित है। जब युवजन अपने स्वधर्म का निर्वाह करने लगेगा, तो समाज में श्रद्धा और आदर का स्थान स्वतः प्राप्त हो जायेगा।

सब देशों में 'जघन्यप्रभवो हि सः' कहकर पुकारे जाते हैं, उनका क्या हाल है? हे भारत के श्रमजीवियों, तुम्हारे नीरव, सदा ही निन्दित हुए परिश्रम के फलस्वरूप बाबिल, ईरान, अलेकजंद्रिया, ग्रीस, रोम, वेनिस, जिनेवा, बगदाद, समरकंद, स्पेन, पोर्तुगाल, फ्रांसीसी, दिनेमार, डच और अंग्रेजों का क्रमान्वय से आधिपत्य हुआ और उनको ऐश्वर्य मिला है। और तुम? कौन सोचता है इस बात को!

जीवन-संग्राम में सदा लगे रहने के कारण निम्न श्रेणी के लोगों में अभी तक ज्ञान का विकास नहीं हुआ। ये लोग अभी तक मानवबुद्धि द्वारा परिचालित यंत्र की तरह एक ही भाव से काम करते आये हैं, और बुद्धिमान चतुर व्यक्ति इनके परिश्रम तथा कार्य का सार निचोड़ लेते रहे हैं। सभी देशों में इसी प्रकार हुआ है। परंतु अब वे दिन नहीं रहे। निम्न श्रेणी के लोग धीरे-धीरे यह बात समझ रहे हैं और इसके विरुद्ध सब सम्मिलित रूप से खड़े होकर अपने समुचित अधिकार प्राप्त करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ हो गये हैं। यूरोप और अमेरिका में निम्नजातीय लोगों ने जागृत होकर इस दिशा में प्रयत्न भी प्रारम्भ कर दिया है, और आज भारत में भी इसके लक्षण दृष्टिगोचर हो रहे हैं। निम्न श्रेणी के व्यक्तियों द्वारा आजकल जो इतनी हड़तालें हो रही हैं, वे इनकी

युवजनों के लिए आज ऐसे ही संकल्प का अवसर विद्यमान है। अब समय है कि हमारा युवजन अपनी शक्ति, अपनी तेजस्विता और अपना नैतिक बल द्विगुणित करने का संकल्प ले और अपने जीवन को रूपांतरित करे। उनके व्यक्तिगत विकास में ही समग्र समाज की उन्नति निहित है। व्यापक बदलाव की भूमि इसी तरह तैयार होगी। कागजी प्रचार और आंकड़ों की कलाबाजी से मुक्त सुदृढ़ संकल्प और अटूट निष्ठा से कोई भी कार्यक्रम या उद्देश्य सफलीभूत हो सकता है। युवजनों की असली पहचान इसी तरह बन सकती है। □

इसी जागृति का प्रमाण है। अब हजार प्रयत्न करके भी उच्च जाति के लोग श्रेणियों को अधिक दबाकर नहीं रख सकेंगे। अब निम्न श्रेणियों के न्यायसंगत अधिकार की प्राप्ति में सहायता करने में ही उच्च श्रेणियों का भला है।

जिनका ऐशो-आराम में लालन-पालन और शिक्षा, लाखों पददलित परिश्रमी गरीबों के हृदय के रक्त से हो रही है और फिर भी जो उनकी ओर ध्यान नहीं देते, उन्हें मैं विश्वासघातक कहता हूँ। इतिहास में कहां और किस काल में आपके धनवान पुरुषों ने, कुलीन पुरुषों ने, पुरोहितों ने और राजाओं ने गरीबों की ओर ध्यान दिया था—वे गरीब, जिन्हें कोल्हू के बैल की तरह चलाने से ही उनकी शक्ति संचित हुई थी।

भारतवर्ष के सभी अनर्थों की जड़ है—जनसाधारण की गरीबी।...पुरोहिती शक्ति और विदेश विजेतागण सदियों से उन्हें कुचलते रहे हैं, जिसके फलस्वरूप भारत के गरीब बेचारे यह तक भूल गये हैं कि वे भी मनुष्य हैं। हमारे अभिजात पूर्वज साधारण जनसमुदाय को जमाने से पैरों तले कुचलते रहे। इसके फलस्वरूप वे बेचारे एकदम असहाय हो गये। यहां तक कि वे अपने आपको मनुष्य मानना भी भूल गये। भारत के सत्यानाश का मुख्य कारण यही है कि देश की संपूर्ण विद्या-बुद्धि राजशासन और दंभ के बल से मुट्ठी भर लोगों के एकाधिकार में रखी गयी है। भारत के दरिद्रों, पतितों और पापियों का कोई साथी नहीं, कोई सहायता देने वाला नहीं—वे कितनी ही कोशिश क्यों न करें, उनकी उन्नति का कोई उपाय नहीं। वे दिन पर दिन डूबते जा रहे हैं। क्रूर समाज उन पर जो लगातार चोटें कर रहा है, उसका अनुभव तो वे खूब कर रहे हैं, पर वे जानते नहीं कि वे चोटें कहां से आ रही हैं। सदियों तक वे धनी-मानियों की आज्ञा सिर-आंखों पर रखकर केवल लकड़ी काटते और पानी भरते रहे हैं। उनकी यह धारणा बन गयी कि मानो उन्होंने गुलाम के रूप में ही जन्म लिया है। हमारे इस देश में, इस वेदांत की जन्मभूमि में हमारा

जनसाधारण शत-शत वर्षों से सम्मोहित बनाकर इस तरह की हीन अवस्था में डाल दिया गया है। उनके स्पर्श में अपवित्रता समायी है, उनके साथ बैठने से छूत समा जाती है। उनसे कहा जा रहा है, निराशा के अंधकार में तुम्हारा जन्म हुआ है, सदा तुम इस अंधेरे में पड़े रहो। और उसका परिणाम यह हुआ कि वे लगातार डूबते चले जा रहे हैं, गहरे अंधेरे से और गहरे अंधेरे में डूबते चले जा रहे हैं। अंत में मनुष्य जितनी निकृष्ट अवस्था तक पहुंच सकता है, वहां तक वे पहुंच चुके हैं।

क्या कारण है कि संसार के सब देशों में हमारा देश ही सबसे अधिक बलहीन और पिछड़ा हुआ है? इसका कारण यही है कि वहां शक्ति का निरादर होता है। स्मृति आदि लिखकर, नियम-नीति में आबद्ध करके इस देश के पुरुषों ने स्त्रियों को एकदम बच्चा पैदा करने की मशीन बना डाला है। फिर अपने देश की दस वर्ष की उम्र में बच्चों को जन्म देने वाली बालिकाएं!!! प्रभु, मैं अब समझ रहा हूँ। हे भाई, 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' (जहां नारियों की पूजा होती है, वहां देवता प्रसन्न रहते हैं)—वृद्ध मनु ने कहा है। हम महापापी हैं; स्त्रियों को 'घृणित किड़ा', 'नरक का द्वार' इत्यादि कहकर हम अधःपतित हुए हैं। बाप रे बाप! कैसा आकाश-पाताल का अंतर है। 'याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात्'। (जहां जैसा उचित हो ईश्वर वहां वैसा कर्मफल का विधान करते हैं।—इशोपनिषद्) क्या प्रभु झूठी गण्य से भूलने वाला है? प्रभु ने कहा है, 'त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी' (तुम्हीं स्त्री हो और तुम्हीं पुरुष; तुम्हीं क्वारि हो और तुम्हीं क्वारि।—श्वेताश्वतरोपनिषद्) इत्यादि और हम कह रहे हैं, 'दूरमपसर रे चाण्डाल' (रे चाण्डाल, दूर हट), 'केनैषा निर्मिता नारी मोहिनी' (किसने इस मोहिनी नारी को बनाया है?) इत्यादि।

यह जाति डूब रही है। लाखों प्राणियों का शाप हमारे सिर पर है। सदा ही अजस्र

जलधार वाली नदी के समीप रहने पर भी तृष्णा के समय पीने के लिए हमने जिन्हें नाबदान का पानी दिया, उन अगणित लाखों मनुष्यों का, जिनके सामने भोजन के भंडार रहते हुए भी जिन्हें हमने भूखों मार डाला, जिन्हें हमने अद्वैतवाद का तत्त्व सुनाया पर जिनसे हमने तीव्र घृणा की, जिनके विरोध में हमने लोकाचार का आविष्कार किया, जिनसे जबानी तो यह कहा कि सब बराबर है, सब वही एक ब्रह्म है, परंतु इस उक्ति को काम में लाने का तिलमात्र भी प्रयत्न नहीं किया।

पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है, जो हिन्दू धर्म के समान इतने उच्च स्वर से मानवता के गौरव का उपदेश करता हो, और पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है, जो हिन्दू धर्म के समान गरीबों और नीच जाति वालों का गला ऐसी क्रूरता से घोंटता हो। अब हमारा धर्म किसमें रह गया है? केवल छुआछूत में—मुझे छुओ नहीं, छुओ नहीं। हम उन्हें छूते भी नहीं और उन्हें 'दूर' 'दूर' कहकर भगा देते हैं। क्या हम मनुष्य हैं? हे भगवन्, कब एक मनुष्य दूसरे से भाईचारे का बर्ताव करना सीखेगा? धर्म में जाति-भेद नहीं है; जाति तो एक सामाजिक संस्था मात्र है। अतः धर्म का कोई दोष नहीं, दोष मनुष्यों का है।

कर्मकांडों से ऊबकर एवं दार्शनिकों की जटिल व्याख्या से विभ्रान्त होकर लोग अधिकाधिक संख्या में जड़वादियों से जा मिले। यही जाति-समस्या का सूत्रपात था एवं भारत में कर्मकांड, दर्शन तथा जड़वाद के मध्य उस त्रिभुजात्मक संग्राम का मूल भी यही था, जिसका समाधान हमारे इस युग तक संभव नहीं हो पाया है।

अवश्य ही जाति-धर्म उत्पन्न हो गया है। अतएव जिसे तुम लोग जाति-धर्म कहते हो, वह ठीक उसका उल्टा है। पहले अपने पुराण और शास्त्रों को अच्छी तरह पढ़ो तब समझ में आयेगा कि शास्त्रों में जिसे जाति-धर्म कहा गया है, उसका सर्वथा लोप हो गया है।

भारत के अधःपतन का कारण क्या था? जाति संबंधी इस भाव का त्याग। जैसे



गीता कहती है—जाति नष्ट हुई कि संसार भी नष्ट हुआ।...आजकल का वर्ण-विभाग यथार्थ में जाति नहीं है, बल्कि जाति की प्रगति में वह एक रुकावट ही है। वास्तव में इसने सच्ची जाति अथवा विविधता की स्वच्छंद गति को रोक दिया है।...प्रत्येक हिन्दू जानता है कि किसी लड़के या लड़की के जन्म लेते ही ज्योतिषी लोग उसके जाति-निर्वाचन की चेष्टा करते हैं। वही असली जाति है—हर एक व्यक्ति का व्यक्तित्व, और ज्योतिष इसे स्वीकार करता है। और हम लोग केवल तभी उठ सकते हैं जब इसे फिर से पूरी स्वतंत्रता दें। याद रखें कि इस विविधता का अर्थ वैषम्य नहीं है, और न कोई विशेषाधिकार ही। प्रत्येक दृढ़मूल अभिजात वर्ग अथवा विशेष अधिकार प्राप्त सम्प्रदाय जाति का घातक है—वह जाति नहीं है। 'जाति' को स्वतंत्रता दो; जाति की राह से प्रत्येक रोड़े को हटा दो, बस, हमारा उत्थान होगा।

जो लोग कहते हैं कि अशिक्षित या गरीब मनुष्यों को स्वाधीनता देने से अर्थात् उनको अपने शरीर और धन आदि पर पूरा अधिकार देने, तथा उनके वंशजों को धनी और ऊंचे दर्जे के आदमियों के वंशजों की भांति ज्ञान प्राप्त करने एवं अपनी दशा सुधारने में समान सुविधा देने से वे उन्मार्गगामी बन जायेंगे, तो क्या वे समाज की भलाई के लिए ऐसा कहते हैं अथवा स्वार्थ से अंधे होकर?

पुरोहित-प्रपंच ही भारत की अधोगति का मूल कारण है। मनुष्य अपने भाई को पतित बनाकर क्या स्वयं पतित होने से बच सकता है?...क्या कोई व्यक्ति स्वयं का किसी प्रकार अनिष्ट किये बिना दूसरों को हानि पहुंचा सकता है? ब्राह्मण और क्षत्रियों के ये ही अत्याचार चक्रवृद्धि ब्याज के सहित अब स्वयं के सिर पर पतित हुए हैं, एवं यह हजारों वर्ष की पराधीनता और अवनति निश्चय ही उन्हीं के कर्मों के अनिवार्य फल का भोग है।

जिन्होंने गरीबों का रक्त चूसा, जिनकी शिक्षा उनके धन से हुई, जिनकी शक्ति उनकी

दरिद्रता पर बनी, वे अपनी बारी में सैकड़ों और हजारों की गिनती में दास बनाकर बेचे गये, उनकी सम्पत्ति हजार वर्षों तक लुटती रही, और उनकी स्त्रियां एवं कन्याएं अपमानित की गयीं। क्या आप समझते हैं कि यह अकारण ही हुआ?

नीच जाति के लोगों से हमारी जनता बनी है, युग युग से ऊंची जाति वालों के अत्याचार से, उठते-बैठते ठोकरें खाकर एकदम वे मनुष्यत्व खो बैठे हैं और पेशेवर भिखमंगों जैसे हो गये हैं। वे हमारी शिक्षा के लिए धन देते हैं, हमारे मंदिर बनाते हैं, और बदले में ठोकरें पाते हैं।

अगर हमारे देश में कोई नीच जाति में जन्म लेता है, तो वह हमेशा के लिए गया-बीता समझा जाता है, उसके लिए कोई आशा-भरोसा नहीं। आइए, देखिए तो सही,...त्रिवांकुर में जहां पुरोहितों के अत्याचार भारतवर्ष भर में सबसे अधिक है, जहां एक-एक अंगुल जमीन के मालिक ब्राह्मण हैं...वहां लगभग चौथाई जनसंख्या ईसाई हो गयी है! यह देखो न—हिन्दुओं की सहानुभूति न पाकर मद्रास प्रांत में हजारों पेरिया ईसाई बने जा रहे हैं, पर ऐसा समझना कि वे केवल पेट के लिए ईसाई बनते हैं। असल में हमारी सहानुभूति न पाने के कारण वे ईसाई बनते हैं।

भारत के गरीबों में इतने मुसलमान क्यों हैं? यह सब मिथ्या बकवास है कि तलवार की धार पर उन्होंने धर्म बदला।...जमींदारों और...पुरोहितों से अपना पिंड छुड़ाने के लिए ही उन्होंने ऐसा किया, और फलतः आप देखेंगे कि बंगाल में जहां जमींदार अधिक हैं, वहां हिन्दुओं से अधिक मुसलमान किसान हैं।

भंगियों और चांडालों को उनकी वर्तमान हीन दशा में किसने पहुंचाया। इसके लिए उत्तरदायी कौन है? मेरा मन बार-बार यह जवाब देता है कि इसके लिए अंग्रेज उत्तरदायी नहीं हैं; बल्कि अपनी इस दुरावस्था के लिए, अपनी इस अवनति और इन सारे दुःख-कष्टों के लिए, एकमात्र हमीं उत्तरदायी हैं—हमारे सिवा इन बातों के लिए और कोई जिम्मेदार

नहीं हो सकता। दोष उनका है, जो ढोंगी और दंभी हैं, जो 'पारमार्थिक' और 'व्यावहारिक' सिद्धांतों के रूप में अनेक प्रकार के अत्याचार के अस्त्रों का निर्माण करते हैं।

यह रोना-धोना मचा है कि हम बड़े गरीब हैं, परंतु गरीबों की सहायता के लिए कितनी दानशील संस्थाएं हैं? भारत के लाख-लाख अनाथों के लिए कितने लोग रोते हैं? हे भगवान! क्या हम मनुष्य हैं? तुम लोगों के घरों के चतुर्दिक जो पशुवत् भंगी-डोम हैं, उनकी उन्नति के लिए तुम क्या कर रहे हो? उनके मुख में एक ग्रास अन्न देने के लिए क्या करते हो?

तोते के समान बातें करना हमारा अभ्यास हो गया है—आचरण में हम बहुत पिछड़े हुए हैं। इसका क्या कारण है? शारीरिक दौर्बल्य। यह शारीरिक दुर्बलता कम से कम हमारे एक तिहाई दुःखों का कारण है। हम आलसी हैं। हम कार्य नहीं कर सकते; हम पारस्परिक एकता स्थापित नहीं कर सकते; हम एक दूसरे से प्रेम नहीं करते, हम बड़े स्वार्थी हैं, हम तीन मनुष्य एकत्र होते ही एक दूसरे से घृणा करते हैं, ईर्ष्या करते हैं।

अपने राष्ट्र में Organization (संगठित होकर कार्य संपादन करने) की शक्ति का एकदम अभाव है। वही अभाव सब अनर्थों का मूल है। मिल-जुलकर कार्य करने के लिए कोई भी तैयार नहीं है। Organization के लिए सबसे पहले Obedience (आज्ञापालन) की आवश्यकता है।

हमारे दो दोष बड़े ही प्रबल हैं; पहला दोष हमारी दुर्बलता है, दूसरा है घृणा करना, हृदयहीनता। लाखों मतमतांतरों की बात कह सकते हो, करोड़ों सम्प्रदाय संगठित कर सकते हो, परंतु जब तक उनके दुःख का अपने हृदय में अनुभव नहीं करते, वैदिक उपदेशों के अनुसार जब तक स्वयं नहीं समझते कि वे तुम्हारे ही शरीर के अंग हैं, जब तक तुम और वे—धनी और दरिद्र, साधु और असाधु सभी उसी एक अनंत पूर्ण के, जिसे तुम ब्रह्म कहते हो, अंश नहीं हो जाते, तब तक कुछ न होगा। ('नया भारत गढ़' से) □

## आदिवासियों के लिए

### समर्पित थे

## डॉ. बी.डी. शर्मा

**डॉ.** ब्रह्मदेव शर्मा, जिन्हें सभी 'डॉ. साहब' से संबोधित करते थे, का विगत 6 दिसंबर, 2015 को मध्य प्रदेश के ग्वालियर में निधन हो गया। वह पिछले कुछ समय से बीमार थे। 'नर्मदा बचाओ आंदोलन' एवं 'जनसंगठनों के राष्ट्रीय समन्वय' ने उनके परिवार एवं 'आंदोलन बिरादरी', जिसके कि वे अभिन्न सदस्य थे, के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त की है।

डॉ. बी.डी. शर्मा ने अपने जीवन के पांच दशकों तक आदिवासियों, दलितों, कामगारों व किसानों को उनके संवैधानिक अधिकार दिलवाने के लिए अथक व निरंतर संघर्ष किया। उनका प्रशासनिक जीवन अशांत बस्तर (सन् 1968) से शुरू हुआ और इसकी परिणति आयुक्त, अनुसूचित जाति-जनजाति आयोग (सन् 1986 से 1991) में हुई। वे नार्थईस्ट हिल्स युनिवर्सिटी (उत्तर पूर्व पहाड़ी विश्वविद्यालय) जो कि एक केन्द्रीय विश्वविद्यालय है, के उपकुलपति रहे एवं योजना आयोग एवं राष्ट्रीय सलाहकार परिषद की ढेर सारी समितियों के सदस्य भी रहे।

वे स्व. एस. आर. संकरन एवं बी. एन. युगांधर के समकालीन नौकरशाह थे। ये तीनों आम जनता के साथ उसी तरह खड़े हुए थे जैसा कि एक सरकारी कर्मचारी को होना चाहिए। अनुसूचित जाति/जनजाति आयुक्त के नाते उन्होंने न केवल इनके सशक्तीकरण को लेकर प्रारम्भिक रिपोर्ट लिखी बल्कि उन्होंने भूरिया समिति रिपोर्ट को लिखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके अलावा पेसा एवं वन अधिकार अधिनियम लागू कराने में भी उन्होंने सक्रिय भागीदारी की थी। आदिवासी मामलों में मंत्रालय के सचिव के नाते उन्होंने आदिवासी उपयोजना की शुरुआत भी की। सन् 2014 तक वे सरकार को विभिन्न आदिवासी योजनाओं के क्रियान्वयन में मदद करने के साथ ही साथ सरकार द्वारा आदिवासियों के साथ की जा रही वादाखिलाफी, अनेक योजनाओं का क्रियान्वयन न होना और अनुसूचित क्षेत्रों में

शासन की असफलता, अर्थात् प्रत्येक मोर्चे पर सरकार को चुनौती भी देते रहे।

वे आदिवासी क्षेत्रों की अशांत एवं युद्ध सदृश्य स्थितियों को लेकर अत्यन्त विचलित थे एवं 17 मई 2010 को उन्होंने राष्ट्रपति को लिखा था, "आदिवासी लोगों के इतिहास के इस गंभीर मोड़ पर मैं राज्य से यह कहने के लिए बाध्य हो गया हूँ कि केन्द्र सरकार स्थितियों को जिसमें कि सन् 1960 के दशक में यहां वहां छोटे-मोटे विद्रोह सामने आ रहे थे, से वर्तमान में युद्ध जैसी परिस्थितियों में परिवर्तित कर देने के लिए उत्तरदायी है। ऐसा उसके द्वारा अपनी संवैधानिक जिम्मेदारी से मुंह चुराने के कारण हो रहा है। वह (आदिवासी) संविधान को अपनाए जाने के दिन से ही अंदर ही अंदर खदबदाते असंतोष को लेकर उदासीन हैं। पिछले 60 वर्षों में उसने किसी भी राज्य को एक भी निर्देश नहीं दिया है। इस गंभीर समय में आप राष्ट्र प्रमुख होने के नाते यह सुनिश्चित करें कि केन्द्र सरकार सुस्पष्ट तौर पर अर्धमृत, अंदर ही अंदर खौलते एवं वंचित आदिवासियों से क्षमायाचना करते हुए अपनी संवैधानिक जिम्मेदारी को स्पष्ट रूप से स्वीकारें, जिनके द्वारा भुगती गयी अनपलट शारीरिक, आर्थिक एवं भावनात्मक वेदना हमारे देश जो कि अभी भी समानता और न्याय के पक्ष में खड़ा है, के उजले माथे पर कभी न मिट सकने वाला दाग है।"

वह ग्रामसभा जो कि संविधान के अनुसार अनिवार्य है, के माध्यम से 'स्वराज्य' के क्रियान्वयन और लोगों के अधिकारों के लिए हमेशा खड़े रहे। साथ ही उनका पूरा जोर 'हमारे गांव हमारा राज' पर रहा। जब वे अनुसूचित जाति/जनजाति आयुक्त के तौर पर कार्य कर रहे थे, उसी दौरान उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय में नर्मदा जल विवाद ट्रिब्यूनल (एन.डब्ल्यू.डी.टी.) अवार्ड के क्रियान्वयन को लेकर पहला मुकदमा दायर किया था। सर्वोच्च न्यायालय ने सरकारों का एन.डब्ल्यू. डी.टी. अवार्ड के क्रियान्वयन का आदेश दिया जिसने कि परियोजना प्रभावित हजारों परिवारों के लिए जमीन के बदले जमीन का मार्ग प्रशस्त किया। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि सर्वोच्च न्यायालय एवं तमाम ट्रिब्यूनलों तथा आयोगों के आदेशों एवं नर्मदा बचाओ आंदोलन के सतत् संघर्ष को नकारते हुए एन. डी.ए. सरकार सरदार सरोवर बांध का निर्माण आगे बढ़ाती जा रही है और इसके परिणाम स्वरूप नर्मदा घाटी के दो लाख से ज्यादा लोग डूब की जद में आ रहे हैं।

डॉ. शर्मा महान द्रष्टा थे एवं सरकार द्वारा नये उदारवादी सुधारों के लागू किए जाने से समाज में बढ़ रही असमानता को लेकर अत्यन्त व्यथित थे। उन्होंने उन्हें उपलब्ध संसाधनों की सीमा के बावजूद सरकार पर कानूनों, योजनाओं और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु दबाव बनाने के लिए अथक कार्य किया। परंतु वे जानते थे कि वास्तविक 'स्वराज' तभी आयेगा, जब लोग स्वयं एकजुट होंगे और इसके लिए संघर्ष करेंगे। साथ ही लोगों का अपने जीवन, जीविका के साधनों, प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण होगा एवं विकास में उनकी भूमिका हो एवं वे विकास की प्रक्रिया के लाभार्थी बन सकें। उन्होंने भारत जन आंदोलन की स्थापना की एवं नर्मदा बचाओ आंदोलन, जनसंगठनों का राष्ट्रीय समन्वय, किसान प्रतिष्ठा मंच, केम्पेन फॉर सर्वाइवल एंड डिगनिटी जैसे तमाम जन संघर्ष एवं आंदोलनों को अपनी आवाज एवं सहयोग प्रदान किया।

उन्होंने देश का सघन भ्रमण किया और किसानों और मजदूरों की आपदाओं के समाधान पर अपने विचार सामने रखे। वह उनके अधिकारों के लिए लगातार पैरवी करते रहे और निरंतर इस तथ्य पर जोर देते रहे कि हम कृषि संकट की ओर तेजी से बढ़ रहे हैं। साथ ही उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि किसानों और मजदूरों को उतना नहीं मिल पा रहा है, जितने के वे हकदार हैं। वह अपने आसपास इकट्ठा लोगों से अकसर पूछा करते थे कि 'बता मेरे यार, मेरी मेहनत का मोल है क्या?'

उन्होंने बहुत कुछ लिखा और अपनी प्रकाशन संस्था सहयोग कुटीर प्रकाशन के माध्यम से उसे प्रकाशित भी किया। उन्होंने कई वर्षों तक हस्तलिखित 'भूमकाल' पत्रिका का प्रकाशन भी किया। वे अत्यन्त मितव्ययिता से जीवन व्यतीत करते थे। उन्होंने सहजता से पूरे देश का भ्रमण किया। खादी का धोती-कुर्ता पहने वह हमेशा सबकी पहुंच में रहते थे। उन्हें वंचितों से लगाव था और उनकी बेहतरी के लिए उनका जीवन साहसपूर्ण संघर्ष एवं समर्पण के लिए हमेशा याद रखा जायेगा। आपके निधन से जनसंघर्ष में लगे सभी साथियों ने अपना महान साथी और शिक्षक को खोया है। संकट और संघर्ष के समय वह हमेशा याद आयेंगे।

समर्पण की साक्षात् प्रतिमूर्ति डॉ. बी.डी. शर्मा को सर्व सेवा संघ एवं सर्वोदय जगत परिवार नमन करते हुए विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता है। □

## कागज तुम्हारा

## जमीन हमारी

□ डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा

अब मौका आया है कि हम सोचें कि हमें कैसा देश बनाना है। यहां हम दो पीढ़ियों के साथ मिल रहे हैं। हम नयी पीढ़ी को गर्व के साथ कुछ भी देने में असमर्थ हैं। तो सोचें गलती कहां हुई। पहली बात यह है कि आजादी राजधानियों के शहरों में फंस गयी है। वहां हमारी शक्ल में लोग बैठ गये तो हमने समझा कि स्वराज्य आ गया। पर यह भूल है। आजादी के बाद भी देश में साम्राज्यवादी व्यवस्था को ही मजबूत किया गया है। यह व्यवस्था आम आदमी खासकर ग्रामीण के हित व सम्मान के विरुद्ध है। इसने आदमी को 'अनागरिक' बना दिया है।

संविधान की 40वीं धारा में पंचायतों केवल 'हुक्म' का पालन कर सकती हैं, 'हुक्म' दे नहीं सकती। खुद 'पंचायत' शब्द से भ्रम होगा। विधान में 'ग्राम पंचायत' नहीं 'पंचायत' शब्द है, जो बंद कमरे में बात-काम करती है। सारी व्यवस्था कमरे में बंद है। हमारा देश आउटडोर सभ्यता वाला है, खुला समाज है, इसे बंद समाज में बदल दिया गया है। यह सारा पुरानी व्यवस्था का दस्तावेज है। यह पहला धोखा हुआ कि असली मालिक ठगा गया है। समाज तो स्वयंभू है, प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण स्वयं में 'अंतर्विरोधी प्रत्यय' है। पर इसमें हमें प्रदत्त अधिकारों से ठगा जा रहा है। स्वयंभू व्यवस्था प्रदत्त अधिकारों से नहीं चलती। यह बंद भीतरी व्यवस्था उस कुत्ते की तरह है जो समझता है कि मैं ही समूची गाड़ी चला रहा हूं। इसका आरम्भ सत्ता का, लूट का बंटवारा मात्र है। इस बंटवारे को ही न्याय कहा जाता है। दुनिया का सबसे बड़ा लुटेरा

क्लाइव 'लार्ड' बना दिया गया था। हमारे भारतरत्नों में भी लुटेरे हैं। हमने इस व्यवस्था को मान लिया, इससे उत्पन्न आक्रोश को तोड़ने का काम किया, यह भारी भूल हुई है। आज बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हित में खेती 'हानि' का धंधा बना दिया गया है। भारत के परम्परागत धंधे वाले 'अकुशल' बना दिए गये हैं। काम करने वाले को 'बिचौलियों' के हवाले कर दिया गया है। इन मान्यताओं को कोई चुनौती नहीं दे रहा है। हमारे विश्वविद्यालय हमें 'अमरीकी दृष्टि' दे रहे हैं, उन्हें भारत का कोई ज्ञान नहीं है। वे गुलामी की ही शिक्षा दे रहे हैं। 'समर्थ ही जी सकता है' इस दासता के मूल्य का प्रसार करते हैं।

एक बड़ी भूल यह भी हुई कि पहले तो विकास हो जाए, 'सामाजिक न्याय' बाद को आएगा। यह गलत मान्यता व तर्क है। और विकास फल के बंटवारे पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। आज गांव व शहर का अंतर काफी बढ़ गया है। नयी तकनीकी इसी काम में लगी है। यहां तक कि सौ रुपये के नोट पर ट्रैक्टर छापा गया। तब गाय को कहां स्थान है। जमीन को 'सम्पत्ति' मानकर खरीद बिक्री की वस्तु बना दिया गया है। फिर हमने पश्चिमी विकास को मान लिया। पर यह पश्चिमी विकास यूरोप-अफ्रीका व भारत आदि में नृशंसों व हुनरों के विनाश पर टिका है। इसको देश की सम्पत्ति पर कुछ लोगों को कब्जा दिलाने का माध्यम बना दिया गया है। इससे या तो पर्यावरण समाप्त होगा या फिर हम मानव रूप में नष्ट हो जायें। अब यह मानस बनाया जा रहा है कि गरीबों को गले की हड्डी कब तक रखा जाएगा? यानी उन्हें समूल नष्ट करना होगा। नागरिक समानता खत्म होकर देश बंट गया है। रेल में, अस्पताल में, स्कूल में गरीब का स्थान खत्म हो गया। अब वैश्यों का स्थान सम्मान का बना दिया जा रहा है। "यौन-उद्योग" पर्यटन आदि के द्वारा बढ़ाया जा रहा है। परिवार टूट रहे हैं, जननी बनना हेय माना जा रहा है।

अतः अब सोचो हम स्वार्थवश होकर यह सब सहन कर रहे हैं। अनुदानों के चक्कर में सम्मान खो रहे हैं। अनुदान भीख व भिक्षा से भी हेय है। हमारी संसद कंगालों की बस्ती बन गयी है। वह विदेशी भीख (कर्ज) मिलने पर तालियां पीटते हैं। अब मात्र आम आदमी ही एकमात्र आशा रह गयी है। भारत का गरीब, गरीब नहीं 'शोषित' है। किसी को अकुशल व हेय मानना व कहना छोड़ दें। इस शोषक व्यवस्था को नकार दें। गांधीवाद को 'आदर्शवाद' के ठप्पे से मुक्त करो। गांधीजी आदर्शवादी नहीं, 'व्यवहारवादी' थे। किसान गरीब क्यों है, शोषित क्यों है? यह बताएं। आम आदमी को सारी व्यवस्था अपने हाथ में ले लेनी होगी। सरकार 'नाई' की तरह संदेशवाहक मात्र है पर वह 'ठाकुर' बन गयी है। जमीन व समाज के अधिकार अब सरकारी कागजों के आधार पर तय नहीं होंगे। अतः 'कागज तुम्हारा जमीन हमारी' का नारा देना होगा। अब वक्त आ गया है कि देश को दिल्ली-मुम्बई के आदेशों पर ही न छोड़ दें।

आदिवासी क्षेत्रों में कुछ उपलब्धियां हुई हैं। स्वशासन का केन्द्रीय कानून गांधी की राह की ओर एक कदम है। हमें 'गांव गणराज्य' की स्थापना करनी है। इसके लिए गैर आदिवासी क्षेत्रों में विशेष व्यवस्था करनी होगी। वहां व्यवस्था कुछ के लिए (दलितभाई के लिए) एकता की भी प्रतीक है। अतः समाज को एक करना, इकट्ठा करना पहला काम है। इसमें शराब आदि बाधक हैं, वैसे भी ये पूंजीवादी अस्त्र हैं। चीन का युद्ध अफीम के लिए हुआ था। शराब की लड़ाई ग्रामस्वराज्य की पहली लड़ाई है। शराब का नियंत्रण सरकार नहीं कर सकती। यह काम केवल राज्य के भरोसे पर नहीं छोड़ा जा सकता। हमें गांधीवादी रीति से समाज विरोधी कानूनों को तोड़ना होगा। इसकी शुरुआत हो गयी है। सब साथ होकर चलें तो जल्दी होगा। यहां से बगावत का संदेश लेकर जाएं। □

\* 34वां अ. भा. सर्वोदय समाज सम्मेलन (मई, 1997), साकेगांव, जलगांव (महाराष्ट्र) में दिये गये उद्घाटन उद्बोधन का संपादित स्वरूप।

कविता

## संघर्ष का संकल्प

□ डॉ. रणजीत

मैं लड़ूंगा

लड़ता रहूंगा

इस बर्बर आततायी अमानवीय व्यवस्था से  
इस तर्कहीन न्यायहीन निकम्मे निजाम से  
लड़ता रहूंगा

जब तक मेरे हाथ-पांव सलामत हैं  
अंतिम नाखून तक, अंतिम दांत तक  
अपने जिस्म की आखिरी हरकत तक  
लड़ूंगा अपनी जान हथेली पर रखकर  
पर उसे उड़ने नहीं दूंगा

एक कायर कबूतर की तरह

क्योंकि जान ही गंवा बैठा अगर मैं  
तो यह लड़ाई कैसे लड़ी जायेगी?

मैं जिऊंगा

इस आदमखोर व्यवस्था के विनाश तक  
और लड़ता रहूंगा इसके खिलाफ

एक जंगली सूअर की तरह

अपने दांतों और खुरों से

और कसकर बांध दिये जाने के बाद

अपनी चिंगघाड़ों से

अंतिम सांस तक

लेकिन अपने मन-मस्तिष्क को स्वस्थ  
रखते हुए

क्योंकि लड़ते हुए

अगर मैं विक्षिप्त हो गया

अगर मुझे दिल का दौरा पड़ गया

तो यह जीत नहीं होगी क्या

इस खूंखार व्यवस्था को?

मैं लड़ूंगा

लड़ता रहूंगा

इस बर्बर आततायी अमानवीय व्यवस्था से  
लेकिन बिना हथियार उठाये  
क्योंकि अगर मैंने

झुंझलाकर धीरज खोकर, हार कर  
पिस्तौल तक उठा ली

तो कितनी खुश होगी यह व्यवस्था  
क्योंकि तब कितना सरल

हो जायेगा इसके लिए

कोने-कोने में तैनात

अपनी किसी भी कारबाइन से

मशीन गन से मुझे भून डालना  
नहीं,

मैं शहीदों के प्रति अपने

पूरे सम्मान के बावजूद

नहीं मरना चाहता एक शहीद की मौत  
न अकेला

न अपने चंद साथियों के साथ

क्योंकि मैं जानता हूँ

कि इस तरह की मौत में मेरा मारा जाना

इस व्यवस्था को कितना सुकून देगा

और मेरा जीवित रहना

कैसे कांटे की तरह कचोटता रहेगा इसे।

मैं लड़ूंगा

लगातार लड़ता रहूंगा

पर किसी सशस्त्र क्रांति की कोशिश में

अपनी जान देने वाले जांबाजों को

सलाम भेजते हुए

मैं यह भी जान और मान गया हूँ

कि हथियारों के मैदान में

इससे जीतना मुश्किल है

जितना दूर

थोड़े दिन लड़ते रहना तक कठिन है

मुझे नहीं लगता

कि हथियारों से कभी परास्त होगी यह

बहुराष्ट्रीय निगमों की रखैल

सर्वनाशी नाभिकीय अस्त्रों से लैस

यह कोटि बाहु कोटि चरण कोटि शीश

राक्षसी

उल्टे उससे हथियारों की लड़ाई  
कर देगी हमारा भी राक्षसी रूपांतरण।

इसलिए बहुत धैर्य से लड़ना पड़ेगा इससे  
बहुत जागरूकता, बहुत सतर्कता से

व्यापक संगठन और आंदोलन से  
कविता से, कहानी से, फिल्म,

दूरदर्शन से

चिन्तन से, मंथन से, विमर्श और

विचार से

दलित शोषित वंचितों के

व्यापक सहकार से

पूर्ण असहयोग से, चुनौती से,

ललकार से।

इसलिए मैं लड़ूंगा

लड़ता रहूंगा

अकेला भी

और सबके साथ भी

अपनी अंतिम सांस तक,

पर अपने संतुलन की कीमत पर नहीं

क्योंकि मैं जान गया हूँ

इस मक्कार व्यवस्था की

सोची-परखी हुई रणनीति

यह मुझे थकाकर

झुंझलवा कर, पगलवा कर

शहीद कर देना चाहती है

लेकिन मैं नहीं बनूंगा

इसकी साजिश का शिकार

साबुत बचाये रखकर अपना संतुलन

लड़ता रहूंगा इससे

जब तक कि यह बदल नहीं जाती

या मुझे खत्म नहीं कर देती

और मेरे खप जाने के बाद भी

लड़ते ही रहेंगे और जैसे असंख्य लोग

जब तक कि बदल नहीं जाती

यह मानवभक्षी-मक्कार

मयाविनी व्यवस्था। □